ओ३म्

भाषा कारिका प्रकाश

सन्धि प्रकरणान्त

प्रथम खण्ड

अनुवादक —

पं० प्रभाकर शास्त्री,

लेखक तथा प्रकाशक —

भूमानन्द ब्रह्मचारी,

भगवद्भक्ति आश्रम, रामपुरा,

रेवाड़ी।

प्रथम बार
१०००

सन् १९२५

मूल्य
आठ आना

धन्यवाद

श्रीमान् सेठ भक्त नन्दकिशोरजी
ा अतिशय धन्यवाद है कि उन्होंने
त पुस्तक के छपवाने में आर्थिक
हायता प्रदान की है ।

विनीत

भूमानन्द ब्रह्मचारी,
भगवद्भक्ति आश्रम, रामपुरा
रेवाड़ी ।

१

प्रस्तावना

श्री पाणिनीय व्याकरण सम्पूर्ण व्याकरणो का शिरोमणि है। इसकी प्रशंसा देश देशान्तरों के विद्वान् अपने मुक्त कण्ठ से कर रहे हैं। इस को बहुत कठिन समझ कर हमने श्री १०८ श्री परम पूज्य श्री गुरुदेव की आज्ञा से सिद्धान्त कौमुदी की गूढ फक्किकायें मूलार्थ सहित सरल हिन्दी भाषामें विस्तार पूर्वक प्राच्यादि ग्रन्थो से संग्रह की हैं। यह इतनी सरलता पूर्वक लिखी है कि गुरु की सहायता बिना ही विद्यार्थी लघु कौमुदी पढकर स्वयं ही सिद्धान्त कौमुदी पढ पढा सकता है। अधिक क्या कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो हमने लिखने में छोडा हो। अतः हम आशा करते हैं कि विद्यार्थी गण इसको उपयोगी समझ कर लाभ उठायेंगे। और शीघ्र ही हमको आगे के प्रकरण प्रकाशित करने में प्रोत्साहित करेंगे। विद्यार्थियो के सुभीते के लिये हमने इसका मूल्य भी बहुत ही कम रक्खा है। साथ मे विद्वानो से प्रार्थना है कि इसमें जो त्रुटियां रह गई हैं कृपया हमें सूचित करदें जिससे हमरे संस्करण में शुद्ध करके इस पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी बनाया जा सके। साथ में हम श्रीमान् पण्डित प्रभाकर शास्त्री जी अध्यापक भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा को भी अतिशय धन्यवाद देते हैं कि जिन्होंने महान परिश्रम करके इस पुस्तक को लिखकर श्री भगवद्भक्ति आश्रम को समर्पित किया है और अग्रिम प्रकरणों के लिखने का वचन दिया है।

ओ३म्

॥ सिद्धान्त कौमुदी-फक्किका ॥

श्रीगणेशं नमस्कृत्य भारतीं च शिवं तथा ।
बालानां सुखबोधाय क्रियते फक्किका मया ॥१॥

विद्यार्थी—श्रीगुरुजी महाराज, ग्रन्थ के आदि में मङ्गल क्यों किया जाता है ।

गुरुजी—ग्रन्थ के बनाने में कोई विघ्न उपस्थित न हो और ग्रन्थ कर्ता को नास्तिक न समझें और ग्रन्थ कर्ता के मङ्गल को देख कर शिष्य, लोग भी मङ्गल करें इसवास्ते ग्रन्थ कर्ता मङ्गल करता है—'मुनित्रय नमस्कृत्य' इति ।

मन्तारो मुनयः (ज्ञातार इत्यर्थः) सकलशास्त्रार्थतत्त्वा- [illegible] सम्पूर्ण शास्त्र के तत्त्व को जानने वाले । नमस्कृत्य—नमस्कार करके । तेषां ... उक्तयस्तासां ... —मुनित्रय की उक्ति को विचार कर । अथवा प्राचीनों की उक्तियों ... इयम् (मद्बुद्धिस्थिपया) यह मेरी बुद्धि में स्थित । ... रणं प्रयोगे ... वा इति वैयाकरणा—व्याकरण के जानने वाले अथवा जानने वाले । आसन्ति इति सिद्ध (निष्पन्न) ... इति सन्त (निष्पन्न) सिद्धो अन्तो येषां ते सिद्धान्ता ... प्रतिवादिभिः निर्णीतार्थाः सिद्धान्ताः) ... वैयाकरणसिद्धान्ताः । ... कुमुदं (चन्द्र), कुमुदस्येव कौमुदी—...

न्तानां कौमुदी इव इति नाम्—वैयाकरणों के सिद्धान्त को चन्द्रमा की चान्दनी के समान प्रकाश करनेवाली।

मया इयं वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी विरच्यते। किं कृत्वा (मुनित्रय नमस्कृत्य) पुन किं कृत्वा तदुक्ती॰ परिभाव्य। अर्थ—मैं भट्टोजिदीक्षित बुद्धि में स्थित इस 'वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी' को बनाता हूँ अर्थात् पठन पाठन पुस्तक सम्पादन द्वारा प्रकाशित करता हूँ। क्या करके मुनित्रय को नमस्कार करके, फिर क्या करके मुनित्रय की उक्ति को विचार कर और प्राचीनों की उक्ति का अनादर करके।

वि॰—मुनित्रय नमस्कृत्य—इतना बड़ा श्लोक क्यों बनाया।

गु॰—[१] मुनित्रय नमस्कृत्य इस पद से मङ्गल किया है।

[२] तदुक्ती परिभाव्यच—इस से अपने ग्रन्थ को प्रामाणिकता सिद्ध की। क्योंकि मुनियों की उक्ति को लेकर बनाने से ग्रंथ प्रमाणिक होगया नहीं तो स्वकपोलकल्पित को कौन मानता।

[३] और प्राचीनों की उक्ति का अनादर किया है। क्योंकि उनके ग्रन्थ बहुत कठिन थे और अशुद्ध भी थे।

[४] श्लोक के उत्तरार्द्ध भाग से 'अनुबन्धचतुष्टय' दिखलाया है।

वि॰—'अनुबन्धचतुष्टय' क्या होता है?

गु॰—प्रवृत्ति प्रयोजकज्ञानजनकज्ञानविषयत्वम्—'अनुबन्धचतुष्टयत्वम्' वस्तु में प्रवर्त कराने वाले ज्ञान का विषय 'अनुबन्धचतुष्टय' कहलाता है प्रवृत्ति प्रयोजक ज्ञानत्वञ्च कृतिसाध्यत्वेसति इष्ट साधकत्वम्—जैसे लङ्का में सोना यह इष्ट साधन है परन्तु कृति साध्य नहीं क्योंकि हम वहां जा नहीं सकते हैं इस वास्ते उस में प्रवृत्ति नहीं

होती है और विष भक्षण यह 'कृतिसाध्य' है, परन्तु इष्ट-साधन' नहीं है क्योंकि विष खाने से मर जाता है इस वास्ते प्रवृत्ति नहीं होती है। इसी वास्ते इस ग्रंथ के पठन में प्रवृत्ति तभी हो सकती है, जब कृतिसाध्य' और 'इष्टसाधन' हों। यह बात 'अनुबन्धचतुष्टय' के बिना नहीं जान सकते हैं। इसवास्ते 'अनुबन्ध चतुष्टय' दिखलाया। वैयाकरणसिद्धान्तविषया निर्ज्ञानम् (प्रयोजनम्) तदभिलाषुरधिकारी। प्रतिपाद्य—प्रतिपादक भाव सम्बन्ध,—ग्रन्थप्रतिपादक पदार्थ प्रतिपाद्य।

॥ विशेष शङ्का ॥

वि०—मुनित्रयं नमस्कृत्य—यहाँ नम शब्द के योग में 'नम स्वस्ति०' इस सूत्र से चतुर्थी होनी चाहिये।

उ०—यहा चतुर्थी नहीं हो सकती है क्योंकि 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी' उपपद विभक्ति से कारक विभक्ति बलवती होती है "नम स्वस्तिस्वाहा०" यह पद का नाम लेकर चतुर्थी करता है। "कर्तु रीप्सित" यह क्रिया का नाम लेकर द्वितीया करता है इस से द्वितीया बलवती है इसवास्ते द्वितीया हुई है। अथवा 'नम स्वस्ति०' इस में नम अर्थवान् है। नमस्कृत्य में अनर्थक है। अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का ग्रहण नहीं होता है। इस लिये चतुर्थी नहीं हुई। परिभाष्य के दो अर्थ कैसे हुये। क्योंकि एक वार उच्चारण किया हुआ शब्द एक ही अर्थ को कहता है, एक बात। दूसरी बात यह कि भू धातु के दो अर्थ कैसे किये गये हैं।

है यहा परिभाष्य शब्द की आवृत्ति कर लेना इस

लिये दो अर्थ हो गये हैं। और धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं, परि पूर्वक भू धातु का विचार और अनादर दोनों अर्थ हैं। इस वास्ते 'परेर्भुवोऽवज्ञाने' इस सूत्र में अवज्ञान ग्रहण सार्थक होता है। क्योंकि अवज्ञान अर्थ तो तुम मानते ही नहीं, फिर अवधान अर्थ में आचार्य ग्रन्थ कैसे करते हैं इसी से जानते हैं कि धातुओं के अनेक अर्थ हैं। इस लिये कोशकार भी 'परिभव - परीभाव' यह अनादर के पर्य्याय शब्द देता है।

वि०—गुरुजी 'मुनीनां त्रयम्' मुनित्रयम यह षष्ठी समास कैसे हुआ क्योंकि त्रि शब्द संख्या का वाचक है और 'संख्या' रूपरस० इत्यादि २४ गुणों में आजाती है। तो पूरण गुण० इस समास के सूत्र से निषेध होने से षष्ठी समास न होना चाहिये।

गु०—बेटे यहां त्रि शब्द गुण वाचक नहीं है। क्योंकि तयप् प्रत्यय लगा देने से 'समुदाय' का वाचक हो गया। (अर्थात् द्रव्य का वाचक) 'त्रयोऽवयवा यस्य' इस व्युत्पत्ति से ग्रन्थ कर्ता लिये गये।

वि०—कौमुदी शब्द की सादृश्यता ग्रन्थ के साथ कैसी हुई।

गु०—बेटे चन्द्रमा का प्रकाश सज्जनों को आनन्द देता है और चोरों को दुख देता है। इसी प्रकार यह ग्रन्थ भी उत्तम बुद्धियों को आनन्द देता है और मन्द मतियों को दुख देता है इस वास्ते सादृश्यता हो गई।

वि०—इदम् शब्द समीप में कोशकारों ने वर्णन किया है कौमुदी अभी बनी ही नहीं है फिर इयम् पद क्यों दिया है।

गु०—बेटे इय का अर्थ मदबुद्धि विषया है। पहिले बुद्धि में बनाकर फिर प्रकाशित किया है इस वास्ते 'इयम' पद है।३।

प्रत्याहार संज्ञा सूत्रों को लिखते हैं—अइउण्०

वि०—महाराजजी इन सूत्रों में सन्धि क्यों नहीं होती है

गु०—बेटे सन्धि की अविवक्षा कर दी है नहीं तो वर्णज्ञान नहीं होता मेल होने से खिचड़ी होजाती इस वास्ते सन्धि नहीं की है।

वि०—अच्छा गुरुजी इनों में विभक्ति क्यों नहीं, और जो विभक्ति रहित होते हैं वे अपद होते हैं 'अपदं न प्रयुञ्जीत' अपद प्रयोग नहीं होता है, इनों का प्रयोग नहीं होना चाहिये।

गु०—प्यारे बेटे, यह अनुकरण है, और अनुकरण प्रकार के होते हैं, एक भेदानुकरण, दूसरा अभेदानुकरण 'कार्यानुकरणयोर्भेदविवक्षा अभेदविवक्षा च' । कार्य अनुकरण की भेद विवक्षा होती है और अभेद विवक्षा होती है अभेद विवक्षा पक्ष में अनुकरण अर्थवान् होने से विभक्ति आती है उसका सौत्रत्वात् सुपांसु० करके लोप कर देना, अभेद विवक्षा पक्ष में विभक्ति आती नहीं है और प्रयोग शास्त्र प्रसिद्ध है, इस वास्ते यह शंका इस प्रकार वारण करना।

वि०—गुरुजी, हयवरट्० और हल्, यह दो 'ह' वर्ण क्यों ये हैं, सम्पूर्ण तो एक ही वार पढ़े हैं।

गु०—बेटे, द्वितीय हकार शलों में आने के वास्ते है, दुह् में ह् शलों में आने से शलइगुप०० इस से क्लि को क्स ा। प्रथम हकार अटों में आने के वास्ते है, अर्हेण में ०० इस से अट् के व्यवधान में न का ण होगया।

०—अच्छा लण् में और अइउण् में दो ण क्यों है।

—लण का णकार व्यर्थ होकर व्याख्यानतो विशेष नैदिसदेहादलक्षणम् ।' इस परिभाषा को ज्ञापन

'एषां वेदबोधनार्थमाह' इन चौदह सूत्रों को वेद बतलाने के वास्ते कहते है, 'इतिमाहेश्वराणि सूत्राणि' यह महेश्वर से आए हुए सूत्र अणादि संज्ञा के वास्ते हैं।

वि०—गुरुजी इस में क्या प्रमाण है कि यह सूत्र महेश्वर से आये हैं और वेद हैं वेद तो अनादि है, यह सूत्र महादेवजी ने बनाये होंगे, अथवा पाणिनीजी ने ही बनाये होंगे, जो बनाए जाते हैं वे आदि नहीं हो सकते हैं।

गु०—वेदे सनकादि ऋषि और पाणिनी जी तप करनेको गये थे, वहां महादेवजीने प्रसन्न होकर अपना डमरू बजाय, उन्हींसे यह सूत्र पैदा हुए, परन्तु अनुबन्ध महादेवजी ने लगा दिये, और सूत्र अनादि है, इसी वास्ते भाष्यकारने लिखा है, कि 'अनुबन्धकरणार्थश्च वर्णानामुपदेश' अर्थात् पाणिनी भी इन सूत्रों को जानते थे परन्तु अनुबन्ध नहीं लगा जानते थे, इस लिये अनुबन्ध लगाकर उपदेश किया। उपदेश बने हुए मंत्र का होता है बना कर नहीं किया जाता है इसी वास्ते 'वृद्धिरादैच्' सूत्र में प्राचीनोंने शङ्का किया है कि वृद्धि विधेय है, आदैच् उद्देश्य है तो 'उद्देश्य पूर्वं वचनम्-विधेयस्य तत परमिति' उद्देश्य पूर्व होता है और विधेय बाद में होता है। यहा विपरीत कैसे किया, इसपर भाष्यकारने कहा है कि 'मंग लार्थं वृद्धिशब्द आदौप्रयुक्तो, इससे मालूम होता है कि मंगलार्थ वृद्धि शब्द आदि में दिया है इसवास्ते वृद्धिरादैच् से अष्टाध्यायी का आरम्भ है, और महादेवजी ने भी नहीं बनाये क्योंकि पूर्वोक्त भाष्य कथन असंगत होता है; इसी वास्ते वोपदेव ने कहा है, "नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव पञ्च वारम्। उद्धर्तु काम सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्र जालम्॥ नृत्य के अन्त में महादेवजी ने नौ पाँच १४ वार डमरू बजाया

उससे यह सूत्र निकले और सनकादिकों की मुक्ति हुई और पाणिनी का शास्त्र बना। इस वास्ते माहेश्वराणि में आगत अर्थ में अण् प्रत्यय करना प्रोक्त अर्थ में नहीं करना। महेश्वरात् आगतानि माहेश्वराणि ननुमहेश्वरेण प्रोक्तानि एव च महेश्वरवरप्रसादात् पाणिनिना मध्यबलल्ब्धानि- किमर्थ-मवलोकनमेषाम्- कुतो वेदत्वात् वेदे पदलेपनमुचितम्-इत्याह अणादिस० अण् आदियींसाता अणादय अणादयश्चता, सञ्ज्ञाश्च। अणादि सञ्ज्ञा-ता पथार्थ प्रयोजनं येषा तानि- अणादि स०।२। कथच-अणादि सञ्ज्ञा इत्याशयेनाह-वे, अणादि सञ्ज्ञा कैसे बनती हैं इस वास्ते कहते हैं- एषाम० एषा पूर्वोक्त सूत्राणा मन्ते भवा येवर्णास्ते हलन्त्य इतियक्ष्यमाणेन इत्सञ्ज्ञकावोध्या। इनो के अन्त्यवर्णइत्सञ्ज्ञक है, या या सञ्ज्ञा सा सा फलवती इतिनियमात् इत्सञ्ज्ञाया फल अणादि सञ्ज्ञाएवेति ॥ ॥

कहीं २ मध्यम इत्सञ्ज्ञक के साथ भी प्रत्याहार बनते हैं इस वास्ते कहते हैं- लँण् सूत्रे० लँण् सूत्र में अकार इत्सञ्ज्ञक है। उरण् रपर इत्यादि सूत्रों में र प्रत्याहार बनाने के वास्ते ॥

वि०—गुरुजी 'लँण्' में अकार अनुनासिक है और उसके ..थ प्रत्याहार बनते हैं इस में क्या प्रमाण है।

गु०—वेटे तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् इस सूत्र के भाष्य में लपरश्चेति वक्ष्यामि लिखा है उस का उरण् 'र' पर में पुन लेप नहीं पाया जाने से कैयट ने लपरश्चेति व्याख्यान कर्तव्यम् यह आशय प्रकट किया है दीक्षित कैयट का अनुयायी हैं इस वास्ते लँण् के लँ में अ को अनुनासिक मानकर 'र' प्रत्याहार बनाने में लाघव समझकर 'र' प्रत्याहार बनाये हैं।

वि०—गुरुजी फिर तो हम ह को यथाचि में भी य प्रत्याहार मान लेंगे ए अरण नहीं करेंगे ॥

गु०—बेटे य प्रत्याहार मानने में कोई इन सूत्र में भी लिये जाते इस वास्ते इकोयण० का ण ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि य प्रत्याहार नहीं है।

वि०—अच्छा र प्रत्याहार मानने में दोष आता है प्रफुल्त यहांपर 'रदाभ्यां निष्ठातोनः०' इसमें र से ल का भी ग्रहण करके त के त का न होना चाहिये।

गु०—अतोलान्तस्य में पृथक् लकारोच्चारणसामर्थ्य से र प्रत्याहार अनित्य है इस वास्ते प्रफुल्त में दोष नहीं है। वास्तविक में इतनी कल्पना करने की अपेक्षा रचलृच रो रो-परो यस्मात् एक शेष करलो 'र' और 'ल' दोनों का ग्रहण हो जायगा यही भाष्य का भी आशय है॥

ननु हयवरट् इत्यादि सूत्रेषु पुनः पुनः अकारोच्चारणेन तस्यहलत्वप्रसङ्गः स्यात् तथाच राम इत्यत्रसोलोपः स्यात् इत्याशयेनाह-हकारा० हयवरट इत्यादि सूत्रों में बार २ अकार पढने से अकार भी हल प्रत्याहारों में आजायगा तब रामसु, यहां पर सु लोप होजायगा इस वास्ते कहते हैं हकारादि० हकारादिकों में अकार उच्चारण के वास्ते है। अर्थात् स्पष्ट उच्चार के वास्ते है।

वि०—गुरुजी यदि उच्चार के वास्ते है तो क्यों लगादिया

गु०—बेटे व्यंजन का ठीक ठीक उच्चारण स्वर के बिना नहीं होता है इसी वास्ते भाष्य में लिखा है कि 'नपुनरन्तरेणाचं व्यञ्जनस्योच्चारणमपि सम्भवति', अच के बिना व्यंजन का उच्चारण भी नहीं होता है। और आचार्य्य की यह शैली है कि यत्तु स्वजातीयान्तत्तुल्यजातीयेषूपदिशति अचोऽच्सु हलो हल्षु, इति। अचों को अचों में लिखते हैं, और हलों को हलों में॥४॥

इस वास्ते हल् घटक अच् हलों में नहीं लिये जाते हैं "यहां र मध्य इत्सञ्ज्ञक के साथ भी प्रत्याहार बनते हैं। इस वास्ते कहते हैं लण् सूत्रे॰ लण् सूत्र में अकार इत्सञ्ज्ञक है। उरण् रपर इत्यादि सूत्रों में र प्रत्याहार बनाने के वास्ते।

वि॰—गुरु जी र में अकार अनुनासिक है और उसके साथ प्रत्याहार बनते हैं इसमें क्या प्रमाण है।

गु॰—तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् इस सूत्रमें लपरश्चेति यद्यपि यह लिखा है उसका उरण्रपर में पुन लेख नहीं पाया जानेसे कैयट ने लपरश्चेति व्याख्यान कर्तव्यम यह आशय प्रकट किया है दीक्षित कैयट का अनुयायी है इस वास्ते लण् के ल में अ को अनुनासिक मान कर र प्रत्याहार बनाने में लाघव समझ कर र प्रत्याहार बनाया है।

वि॰—गुरु जी फिर तो हम इको यणचि में य प्रत्याहार मान लेंगे और ण ग्रहण नहीं करेंगे।

गु॰—बेटे य, प्रत्याहार मानने में ढ्वे इस सूत्र में भी लिया जाता है इस वास्ते इको यण॰का ण् ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि य प्रत्याहार नहीं है।

वि॰—गुरु जी यों तो र प्रत्याहार मानने में भी दोष आता प्रफुल्त, यहां पर "रदाभ्यां निष्ठातोन॰" इसमें र से लकार का ग्रहण करके। क्त के त का ल होना चाहिये।

गु॰—अतोल्लान्तस्य में पृथक् लकारोच्चारण सामर्थ्य से र प्रत्याहार अनित्य है। इस वास्ते प्रफुल्त में दोष नहीं है। वास्तविक में इतनी कल्पना करने की अपेक्षा उरण्रपर में ऋच लृच रो

रौ परौ यस्मात् यह एक शेष करलो और फिर पर के साथ समास और ऋ लृ की सवर्ण संज्ञा होने से ऋ से लृ भी लियाजायगा और 'रपर, से-र-ल यह दोनों लिये जायगे तो कार्य चल जायगा यही भाष्य का भी आशय है।

प्रथम। हलन्त्यम्। हलोऽन्त्यम्-इति षष्ठी तत्पुरुष। हल् का अन्त्य इत्संज्ञक हो। हल् का अन्त्य हल् सूत्र में रहता है। इस वास्ते फलित हुआ हलिति सूत्रे० हल् सूत्र मे अन्त्य इत्संज्ञक हो॥ आदि २॥ यस्मात् परोनास्ति सोऽन्त्य। यस्मात् पूर्वो नास्ति, स-आदि। आदि का अर्थ आद्याऽवयव है, अन्त्य का अन्तावयव है। आदि, अन्त से मध्य समुदाय का आक्षेप हो गया। इस वास्ते यह अर्थ हुआ। अन्त्य इत् सहित आदि मध्य घटित समुदाय का बोधक हो।

वि०—इस अर्थ में तो आदि अन्त का भी प्रत्याहारों मे ग्रहण होना चाहिये।

गु०—बेटे संज्ञा संज्ञिनं बोधयित्वा स्वयं निवर्तते इस भाष्य न्याय से आदि अन्त का बोध नहीं होगा। इस वास्ते कहते है 'स्वस्य च०' आदि का भी बोधक होता है। और अन्त्य का नहीं होता है।

वि०—गुरु जी अष्टाध्यायी में तो एक हलन्त्यम् सूत्र है यहा दो सूत्र कहा से आगये।

गु०—बेटे एक हलन्त्यम् सूत्र के होने से अन्योन्याश्रय दोष आता है। और अन्योन्याश्रयाणि कार्य्याणि शास्त्रे न प्रकल्पन्ते। जो परस्पर एक दूसरे का आश्रय रक्खे वह परस्पर-

में,पेत्त कहलाते हैं। उसी को अन्योऽन्याश्रय कहते हैं वह अन्यो-न्याश्रय कार्य शास्त्र में नहीं ग्रहण किये जाते हैं इस वास्ते दो सूत्र बनाये।

वि —गुरु जी अन्योन्याश्रय कैसे आता है।

गु०—एक हलन्त्यम् हो तो उसका क्या अर्थ हो।

वि०—उपदेश में अन्त्य हल् इत्संज्ञक हो यह अर्थ हुआ।

गु०—बेटे यह अर्थ नहीं बन सकता है। क्योंकि 'वाक्यार्थ विषयक शाब्द बोध प्रति पदार्थ ज्ञानस्य कारणता वाक्यार्थ विषयक शाब्द बोध के प्रति पदार्थ ज्ञान का कारणता होती है वाक्य कौन उपदेशेऽन्त्य हलित्स्यात् अर्थ कौन उपदेशों में अन्त्य हल् इत्संज्ञक हो इस अर्थ विषयक शाब्द बोध में प्रत्येक जो पद है उपदेश-अन्त्य-हल्-इत् इन के अर्थों को कारणता है। यहा उपदेश तो लिख दिया है-उपदेशआद्यो अन्त्य शब्द का आदिरन्त्येन इस गत सूत्र में बोध हो गया। अब हल् क्या-वस्तु है यह बतलाओ और जब तक हल का ज्ञान न हो तब तक सूत्र का वाक्यार्थ हो ही नहीं सकता है।

वि०—गुरु जी हल् करके हम हल् प्रत्याहार लेते हैं ह से ल् तक।

गु०—बेटे हल् प्रत्याहार किस सूत्र से बना।

वि०—आदिरन्त्येन० इससे बना।

गु०—इसका क्या अर्थ है।

वि०—अन्त्यइत् सहित आदि मध्यमें रहने वाले वर्णोंका बोधक हो।

गु०—यहाँ भी तो कहेंगे, कि वाक्यार्थ विषयक इत्यादि में पदार्थ ज्ञान को कारणता है। यहाँ इत् शब्द का क्या अर्थ है।

वि०—इत् का अर्थ है इत् संज्ञा।

गु०—इत् संज्ञा किसने की।

वि०—हलन्त्यम् ने की है।

गु०—बेटे उस में भी तो वाक्यार्थ इस नियम से इत् ज्ञान विना हल् ज्ञान के नहीं हो सक्ता। और हल् ज्ञान इत् ज्ञान केविना नहीं हो सकता यही परस्पर सापेक्ष होते हैं। इसको अन्योन्याश्रय कहते हैं। इस वास्ते दीक्षित ने हलन्त्यम् की आवृत्ति की है द्विरुच्चारणमावृत्तिः।

वि—अब तो अन्योन्याश्रय नहीं रहा।

गु०—बेटे अबतो प्रथम हलन्त्यम्से हल् जो चौदहवां सूत्र है उसके अन्त्य ल् की इत्संज्ञा करलो अब इत का ज्ञान होगया इत् ज्ञान होने से आदि रन्त्येन इस का वाक्यार्थबोध हो गया। अब हल् प्रत्याहार बन गया हल् के बनने पर दूसरे (हलन्त्यम) का वाक्यार्थ हो गया इसमे अन्य प्रत्याहार बन गये। इस आशय से लिखा है इति हल् संज्ञायाम्। सप्तम्यन्त पाठ इतर संज्ञा को सूचित करता है।

वि०—आवृत्ति में क्या प्रमाण है।

गु०—न विभक्तौ तुस्माः यह सूत्र ही प्रमाण है। क्योंकि प्राप्तौ सत्या निषेध इत् संज्ञा पावे तब निषेध हो। इत् संज्ञा करने वालों का तो वाक्यार्थ ही नहीं हुआ फिर निषेध कैसा इससे जानते हैं कि हलन्त्यम् की आवृत्ति की है।

वि०—हम आवृत्ति के विना ही कार्य चलालेंगे। हल् इस सूत्र के स्थान में हल् पढे गें और ल् की उपदेशेऽज० इससे इत्संज्ञा करके हल् बनाये गे ।

गु०—बेटे उसमे भी तो अच् है। अच् प्रथम बनजायगा तब ल् की इत्संज्ञा हो सक्ती है ।

वि०—अच्छा हम यह कहे गे कि हल् में पाणिनि जी ने ल् को स्वय इत्संज्ञक पढा है अन्योन्याश्रय नहीं है ।

गु०—बेटे इस मे क्या प्रमाण है कि ल् इत्संज्ञक पढा है ।

वि०—गुरू जी न विभक्तौ । यह सूत्र ही प्रमाण है । यदि हल् प्रत्याहार नहीं होते तो हलन्त्यम् इत्संज्ञा कैसे करता और न विभक्तौ निषेध किसका करता इससे जानते हैं हल् मे ल् स्वयमेव आचार्य ने इत्संज्ञक पढा है ।

गु०—छात्रो को इस बात का ज्ञान नहीं होता इस वास्ते आवृत्ति की है ।

वि०—अच्छा हम हलन्त्यम् एक ही सूत्र रक्खे गे और हल् ग एक शेष करे गे । हल् च हल् च हलौ तयोरन्त्यम् हलन्त्यम् एक हल् का अर्थ करे गे हल् का ल् इत्संज्ञक हो दूसरे का वही अर्थ करके कार्य चलावगे फिर आवृत्ति क्यों की । अथवा हलन्त्यममें हल् को तन्त्र मानलेवेंगे (द्व यर्थ बोधकत्व तन्त्रत्वम्) फिर अर्थ वैसा ही करे गे फिर क्यो गौरव किया ।

गु०—एक शेष और तन्त्र में छात्रो को ज्ञान नहीं होता इस लिये आवृत्ति की है । हलन्त्यम मे हल् को ह से ल् तक रूढि सज्ञा मान लेवे तो आवृत्ति करने की आवश्यकता नहीं रहेगी ।

वि०—रूढि मानने में प्रमाण क्या है।

गु०—हलन्त्यम् यह सूत्र ही प्रमाण है। अन्यथा व्यर्थ ही हो जाता है।

वि०—उपदेश पदार्थ क उपदेश किसे कहते हैं।

गु०—उपदेश आद्योच्चारणम्। यहाँ उप का आदि अर्थ है और दिश का उच्चारण अर्थ है। इस वास्ते आद्योच्चारणम् यह अर्थ हुआ।

वि०—किस का आद्योच्चारणम्।

गु०—उपस्थितत्वात् इस शास्त्र के करने वाले पाणिनीय कात्यायन पतञ्जलि महेश्वर के प्रथम उच्चारण को उपदेश कहते हैं। ततोऽण जिति। हलन्त्यम् इस का वाक्यार्थ होने से अण् अच् इत्यादि सञ्ज्ञा सिद्ध हो गई। यहा भी सप्तम्यन्त पाठ उपदेशे ऽ जनु इस के वाक्यार्थ को सूचित करता है। उपदेश में अनुनासिक अच् इत्सञ्ज्ञक हो। ननु व्याकरणेऽनुनासिक चिन्हस्य लेख प्रमादादि दोषेण परि भ्रष्ट त्वादाह। प्रतिज्ञा। प्रतिज्ञायत इति प्रतिज्ञा। अनुनासिकस्य भाव आनुनासिक्यम्। प्रतिज्ञा नुनासिक्यम येषाँ ते। पाणिन्यादिको से कहे हुए वर्ण प्रतिज्ञा विषयक अनुनासिक धर्म वाले जानने। प्रतिज्ञा च अयमनुनासिक इति साक्षात कथनम्। कुत्र चित् अनुमानात्। अर्थात् सूत्रों के कार्य देखकर अनुनासिक जानलो। जैसे सु और जस् यहाँ स् मे उ अनुनासिक है, प्रत्यय इत्यादि सूत्रों में विसर्ग देखने से। ननु कृष्णर्द्धिरित्यत्र उरण रपरइत्यनेन ऋकारस्य अर् भविष्यतिपरन्तु तवल् कार इत्यत्र अल् कथ स्यात् इत्याशयेनाह।

लण सूत्रस्था० । लण् सूत्रस्थ जो अवर्ण उसके साथ उच्चार्यमाण जो रेफ वह रल का बोधक हो । लॅण् मे अकार की इत्संज्ञा करके आदिरन्त्येन से र प्रत्याहार बनाकर कार्य करो । ननु रलयोः सज्ञा इति कथ कुन टकारस्यापि मध्यगत्वेन रट्लानामित्युचितम् । रलयो कहना ठीक नहीं क्योंकि टकार भी मध्य मे आगया अत रटलाना कहना चाहिये इस वास्ते कहते हैं—प्रत्याहारेष्विता न ग्रहणम् । प्रत्याहारों मे इत्सज्ञक का ग्रहण नहीं होता है । प्र० क्या प्रमाण है । उ० अनुनासिक इत्यादि० । नह्यत्र० । यहा णकार परे रहते इ का य् नही किया है इससे जानते हैं कि प्रत्याहारों मे इत्सज्ञक का ग्रहण नहीं होता ।

वि०—गुरु जी यहा तो कोई दोष नहीं हो सकता । क्योंकि णम् धातु से ण्वुल् प्रत्यय होता है । वु को अक् होता है टाप् होता है प्रत्ययस्था० इससे क मे अकार को इ होकर 'अनुनासिक' शब्द बनता है । अब यहापर यण् हो ही नहीं सकता है, क्योंकि यदि हो जाय तो 'प्रत्ययस्था०' यह सूत्र ही व्यर्थ हो जावगा । क्योंकि जहा र क से पूर्व इ मिलेगा वहा र प्रत्यय स्था से हुवा मिलेगा, अत तो लाघवात् 'प्रत्य-' यस्थात्कात्पूर्वस्य यत्राप्यसुपं' ऐसा ही सूत्र कर देगें। इकोयणचि लगाने की आवश्यकता ही न होगी । पुन इकार विधान क्यों किया वही व्यर्थहोकर ज्ञापन करता है कि यण् नहीं होता है पुनः अनुनासिक० इत्यादि निर्देशात् कैसा ।

गु०—प्रत्यस्थात् से किया हुआ इत्व विधान व्यर्थ नहीं है क्योंकि यहा 'इको सवर्णे शाकल्पस्य० करके इ को विकल्पसे ह्रस्व करेंगे तो जहाँ ह्रस्व हो गया है वहा ह्रस्व विधान सामर्थ्य से यण की प्राप्ति नहीं है । इस वास्ते प्रत्ययस्थात् सूत्र का इत्व-विधान

चरितार्थ हो गया व्यर्थ नहीं। और हस्व अभावपक्ष में अनुनासिक इत्यादि निर्देश भी ठीक हो गया।

वि०—इको सवर्णे० में तो चकार से प्रकृति भाव का अपकर्ष किया है तो प्रकृति भाव हो जायगा फिर यण् की प्राप्ति ही न रहेगी फिर निर्देश कैसा।

गु०—ह्रस्व विधान सामर्थ्यादेव प्रकृतिभावेसिद्धे तदनुकर्षणार्थश्चकारो न कर्त्तव्य इति भाष्ये स्थितम्। इस वास्ते इस चकार से प्रकृति भाव नहीं आता है इसलिये अनुनासिक निर्देश ठीक ही है।

वि०—अच्छा अनुनासिक यहां पर क को अच् मानने में यस्येति० से इकार लोप क्यों नहीं होता है।

गु०—बेटा यहां तो कृदन्त ण्वुल् किया है अजादि तद्धित प्रत्यय परे नहीं है इस वास्ते लोप नहीं होता है।

वि०—अच्छा हम णास धातु से गुरोश्च हल इससे अ प्रत्यय करके और टाप्प्रत्यय करके फिर संज्ञायां कन् इससे तद्धित में कन करके 'केऽण' से ह्रस्व करके और उदीचामा०से इत्व करके नासिका बनायेंगे तब तो यस्येति च करके लोप हो जायगा।

गु०—फिर भी अनुनासिक इत्यादि निर्देशात् यह कथन हमारा ठीक ही है क्योंकि अच् का यं लोपभी है लोप क्यों नहीं किया, यही प्रमाण है कि "प्रत्याहारेष्वितां न ग्रहणम" द्वितीय बात यह है कि "यस्येति च" अन्तरङ्ग है और 'प्रत्ययस्थात्' 'उदीचामात' इत्यादि बहिरङ्ग हैं अत 'यस्येति च' की दृष्टि में इत्व असिद्ध है तो लोप नहीं हो सकता यण् ही प्राप्त है। वास्तविक में यह निर्देश ठीक नहीं है, प्रत्याहारों में अनुबन्ध का ग्रहण नहीं हो सकता, क्योंकि 'आचारादप्रधानत्वाल्लोपश्च बल-

उत्तर—पाणिनीके व्यवहार से अर्थात् अचों को अचों में पठन से और हला को हलों में पठन करने से अच् प्रत्याहारों में हल् का ग्रहण नहीं होता है । द्वितीय अप्रधानत्वात् अर्थात् आदिरन्त्ये० यह संज्ञा सूत्र है और जितने संज्ञा सूत्र होते हैं व अप्रधान होते हैं और तस्य लोप यह विधि सूत्र है इस वास्ते प्रधान है—तो प्रधान जो लोप है वह संज्ञा विधायक जो आदि रन्त्ये० सूत्र है उसको बाध कर लोप कर देगा—इस वास्ते प्रत्याहारों में इत्संज्ञक का ग्रहण नहीं होता है । तृतीय बात यह भी है कि प्रत्यय स्थात्०के इत्वादि विधान से साक्षात् इकोयणचि इस विधि शास्त्रके बाधन करने की अपेक्षा गौण जो आदि रन्त्येन० संज्ञा सूत्र है उसका बाधन करलो है । इस वास्ते—तृ पि मृपि कुपे-यहा क परे रहते मृपि की इ को य नहीं किया । अनुनासिक इत्यादि निर्देशात् यहा आदि शब्द से क पदान्तदति—इत्यादि निर्देश लेना । कोई विद्वान् अनुनासिक यादि निर्देशात् को इस प्रकार कहते हैं कि अनुनासिक के 'क' 'र 'क' में अ को आचार्यने दीर्घ नहीं किया इससे जानते हैं कि प्रत्याहारों में इत्संज्ञक का ग्रहण नहीं होता है नहात्र ककारे परे० यहाँ ककारेऽपरे ऐसा कहते हैं कि अ है परे जिसके ऐसा ककार परे रहते ऐसा छेद करते हैं,

वि०—हमने तो र प्रत्याहार के विषय में पूछा था कि अनुबन्ध क्यों नहीं लिया जाता । आपने सम्पूर्ण प्रत्याहारों का उत्तर कैस किया कि प्रत्याहारेषु० ।

गु०—बेटे यार र मुझे तग करते कि यण् आदिक म अनुबन्ध का ग्रहण क्यों नहीं होता इसलिये मैंने सबका समाधान एक साथ कर दिया है ।

'प्रत्याहारेऽनुबन्धाना कथमज् भहणेषु न, इस वार्त्तिक में प्रत्याहार शब्द चतुर्दश सूत्रों में रूढ़ि माना है फिर बहुवचन कैसा । इस वास्ते कहते हैं आदिरन्त्येनेतिसूत्रे० आदिरन्त्येन से जो सज्ञा बनाई गई है उसका हम प्रत्याहार शब्द से व्यवहार करते हैं गृह। द्वारा के समान समझो । अर्थात् इन्हीं सूत्रों से बनते हैं इसलिये ऐसा व्यवहार किया है (प्रत्याह्रियन्ते वर्णा एकत्रीक्रियन्ते यत्रासौ प्रत्याहार) प्रसङ्गात् अचा भेद प्रदर्शनाय आह ऊकालो० अत्र ऊकाल शब्दे, त्रयाणा उकाराणा क्रमेण प्रश्लेषं दर्शयति । उश्च ऊश्च ऊ३श्चेति द्वन्द्व समासे उ ऊ ऊ इति, जाते (अक सवर्णे दीर्घ) इति वार द्वय, दीर्घे ऊ इति रूप ऊ शब्दात् जसि जकारस्येत्वे लोपे च ऊ अस्–ऊकारस्य इकोयणचि इति वकारे सकारस्य विसर्गे व इति रूपम् पुन बहुव्रीहि, समासे, व काल यस्य स ऊकाल

वि० क्या अर्थ हुआ ।

गु०–ऊ है काल जिसका ऐसा अच् क्रमसे ह्रस्वदीर्घ प्लुतसज्ञक हो

वि०—प्रजी ऊ तो वर्ण है यह काल हो ही नहीं सकता है

गु०—ऊ शब्द की स्व उच्चारणाधिकरणीभूतकाल सदृश काल में लक्षणा करदो । वा काल इव यह फलित कथन है उ ऊ ऊ त्रय का जो उच्चारणाधिकरणीभूत काल उस काल के सदृश है काल जिसका ऐसा जो अच् वह क्रम से ह्रस्व दीर्घ प्लुत सज्ञक हो सप्रत्येक० वह ह्रस्वादि सज्ञक अच् उदात्तादि भेद से तीन प्रकार का है । तीन प्रकार का कौन कस्ता है–इस वास्ते कहते हैं —

उच्चै०—भागों सहित जो ताल्वादि स्थान उन्हो के ऊर्ध्व के भागों मे उच्चार्यमाण अच् उदात्त सज्ञक हो । निपाता आद्युदात्ता । इससे आ उदात्त हुआ । यद् यह–फिषोन्तोदात्त

प्रातिपदिक का अन्त उदात्त होता है य में अ उदात्त। फिर जस् प्रत्यय लाये—यद् जस् अनुदात्तौ सुप्पितौ इससे जस् अनुदात्त। जश शी—आद्गुण—इति; गुणे। एकादेश उदात्तेनोदात्त इति एकार उदात्त।

नीचैर०—भागों सहित जो ताल्वादि स्थान उन्हों के अधो भागमे उच्चार्यमाण अच् अनुदात्त सञ्ज्ञक हो। अर्वाङ् यह अव्युत्पन्न ग्रातिपदिक हैं। 'सन्मुख' अर्थ का वाचक। फिपोऽन्तोदात्त इससे ा' में आ उदात्त। शेप भाग जो अकार है वह अनुदात्त पदमेक वर्जम् से अनुदात्त है।

समाहा०—समाह्रियन्ते यत्र असौ। उदात्त अनुदात्त की अनुवृत्ति करना। और दात्त अनुदात्त यह वर्ण हैं।

दो वर्ण एक में नहीं रहते जैसे ब्राह्मण और क्षत्री एक जगह नहीं रहते—इस वास्त उदात्त और अनुदात्त को धर्म परक करलो। अर्थात् उदात्तत्व और अनुदात्तत्व यह वर्णों के धर्म एकत्रित किये य जिससे वह अच् स्वरित सञ्ज्ञक हो। उदात्त और अनुदात्त ; में मिल गये। अब हम कैसे जाने कि कौन भाग उदात्त और कौन भाग अनुदात्त है इस वास्ते कहते हैं—

तस्यादित०—इस सूत्र में अर्ध ह्रस्वम् इसका क्या अर्थ है। ह्रस्वस्यार्ध इति अर्द्धह्रस्वम्—यदि ऐसा समास किया जाये तो ह्रस्व स्वरित का अर्ध भाग उदात्त जानना और उत्तरार्ध परिशेप स अनुदात्त जानना यह अर्थ होगा—

वि० तब तो दीर्घ प्लुत में सूत्र नहीं लगेगा।

गु० इस सूत्र मे ह्रस्व ग्रहण मन्नम। ह्रस्व ग्रहण अविवक्षित अर्थात् पुरुष पाठार्थ है। अथवा स्वशास्त्र सकेतित रूप से

अर्थ बोधजनक नहीं है किन्तु अर्ध ह्रस्व शब्द अर्ध मात्रा मे रूढ है (अर्ध ह्रस्व=आधी मात्रा) चाहे वह ह्रस्व स्वरित की हो। चाहे दीर्घ-चाहे प्लुत-सब का ग्रहण करना चाहिये। अर्धो ह्रस्वो यस्मिन् स्वरिते-इति कृतेतु न कुत्रापि दोष (अधिकमक्त प्रभायाम्)

श। स्वरित में उदात्तत्व और अनुदात्तत्व दो भाग मिले हैं अब उसका उच्चारण कैसे होगा इस वास्ते कहते हैं।

तस्य चोदात्त० तस्य अनुदात्तस्येत्यर्थ। प्राति शाख्य मे छन्दो का उच्चारण प्रसिद्ध है। कवोऽश्वा। 'किमोऽन्', इस से अन् प्रत्यय 'काति' इससे किम् के स्थान में क। तित्स्वरित इससे क मे अ स्वरित है। व इति-युष्माक स्थाने। अनुदात्त सर्व मपादादौ इति अनुदात्तम्॥ दीर्घ स्वरित का 'रथाना न- येऽरा। यहा य में ए 'स्वरिते वानुदात्ते पदादौ' इस से स्वरित है। स्वरित परक का उदाहरण-शतचक्र योऽह्य' 'उदात्त स्वरितयो इति स्वरित। अकारस्य पूर्व रूपे, 'एकादे०' इति स्वरित। स्वरित से स्वरित परक का उदाहरण है।

मुखनासि०। मुखञ्च नासिका च मुखनासिका तया सहित मध्यम पद लोप कर्मो। मुख सहित नासिका करके उच्चार्य माण वर्ण अनु नासिक सञ्ज्ञक हों। इसने वर्णो के दो भेद किये तदित्थम्। तस्मात्कारणात् इत्थ सिद्धम्। ऊकालो० से लेकर यहा तक यह बात सिद्ध हुई। अ इ उ ऋ। एषाँ वर्णाना। सवर्ण सञ्ज्ञा के वास्ते कहते हैं।

तुल्यास्य०। तोलन तुला तुलया समित तुल्यम्। अस्यति

वर्णा अनेनेति आस्यम् । प्रकृष्टो यत्न प्रयत्नः । आस्य च प्रयत्नश्च आस्य प्रयत्नम् । तुल्य आस्य प्रयत्नं यस्य तत् । समानं वर्णं सवर्णम् ताल्वादि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न यह दोनों जिस वर्ण के जिस वर्ण के साथ एक हों वह सवर्ण संज्ञक हों । स्थानस्यप्रयत्नस्य च सूत्रे पठनादाह । अकु० । कस्य किं प्रयत्न मित्याह तत्रेति । ननु सर्वे वर्णा पूर्वप्रयत्नेषु समास। सम्वृत प्रयत्न कस्येत्याह । ह्रस्वस्या० ह्रस्व अकार का सिद्ध किये हुए प्रयोग में सवृत प्रयत्न है । ननु दण्ड–आनयन मित्यत्र डकार वृत्ति रकारस्य सवृत्त आनय आकारस्य च विवृत्त प्रयत्न भेदेन सवर्ण संज्ञाया अभावाद् दीर्घो न स्यात् । अत आह प्रक्रिया० । साधन अवस्था में तो अ भी विवृत ही है । इस वास्ते दीर्घ होगया । ह्रस्व के प्रयोग में सवृत होता है इस में क्या प्रमाण इस लिये कहते हैं । तथा हि । सूत्र दर्शयति । अ अ इति यहा प्रथम अ विवृत है और द्वितीय सवृत है तो क्या अर्थ हुआ अ को अ हो । अर्थात विवृत के स्थान मे सवृत हो । इस वास्ते कहते हैं । विवृत मनूद्य० विवृत्त कह कर सवृत इसने विधान किया । जहां २ साधु प्रयोगों में विवृत हो वहा २ सवृत इससे करके बोलो वेद मन्त्रों में तथा व्याकरण में । परन्तु दीर्घादि कार्य करने में विवृत समझो ।

वि०—इसमें क्या प्रमाण है कि सधि आदि करने में विवृत समझे सूत्र ने तो संवृत किया है । इस वास्ते कहते हैं । अस्य चेति० अस्य अर्थात् अ अ इत्यस्य । असिद्ध कौन कहता है इस वास्ते कहते हैं तथा चेति० पूर्वत्रा० । यहां पूर्व शब्द सम्बन्धी शब्द होने से पर शब्द का आयाहार करना । सो क्या अर्थ हुआ

पूर्व के प्रति पर शास्त्र असिद्ध हो। यह सूत्र ८-२-१ के पाद का प्रथम सूत्र है इसके पहिले (प्रथम मे) ७ अध्याय और अष्टम का १ पाद है बाकी तीन पाद इससे चले हैं तो इसके पूर्व सवा सात बचे इस वास्ते कहते हैं सपाद सप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा०। और यह अधिकार सूत्र भी है इस वास्ते कहते हैं अधिकारोयम अर्थात् ८-२-१ से अष्टम के ३ पाद में अधिकार जायगा इस वास्ते यह अर्थ होगा तेन त्रिपाद्यामपिपूर्वम्प्रति० त्रिपादिकों मे भी पूर्व के प्रति पर शास्त्र असिद्ध हो। जैसे अपने के आगे के ८-२-२ के 'न लोप सुप्स्व०' में अधिकार जायगा और यह कहेगा 'परस्मिन् कर्त्तव्ये इदम् न लोप सुप्' इति असिद्धम्। भाष्यकार ने इसे विधि और अधिकार दोनों माना है। और यह शास्त्रों को असिद्ध करता है कार्यो को नहीं।

किस वर्ण का कौन प्रयत्न है इस वास्ते कहते हैं।

खयायमा इति० खय् प्रत्याहार और खय् सम्बन्धी यम चार लेना कचं ट त, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, विसर्ग, श, ष, स, एते श्वासानुप्रदाना० श्वास प्रयत्नवन्त। अघोषाश्च। अघोष प्रयत्न है। विवृण्वते कण्ठम्–कण्ठ को खोलते हैं इस वास्ते विवृत प्रयत्न है। अन्येतु हश् और हश् सम्बधी यमोका। यह कारिका अन्त में देखो। तुल्यास्य० सूत्र में प्र लगाने से आभ्यन्तर का ग्रहण होता है इस वास्ते बाह्य प्रयत्नों का यहा क्या कार्य था इस वास्ते कहते हैं बाह्य प्रयत्ना० बाह्य प्रयत्न यद्यपि सवर्ण सज्ञा में उपयोगी नहीं है तथापि आन्तरतम्य 'स्थानेऽन्तरतम' में उपयोगी हैं। ऋलृवर्णयो। आच्लृवर्णश्चेति समास। भिन्न स्थान वाले ऋलृ वर्णों की भी सवर्ण सज्ञा कहना।

अकार हकार्यो:—विवृत मूष्मणा स्वराणा च इनसे शसप ह का और स्वरो का एक विवृत प्रयत्न माना है तब तो अकार और हकार का कण्ठ स्थान और विवृत प्रयत्न है। इसी प्रकार इ का और शकार का तालु स्थान और विवृत प्रयत्न, ऋकार और षकार का मूर्धा स्थान विवृत प्रयत्न होन से सवर्ण सज्ञा पाई इस वास्ते कहते हैं।

नाज्झलौ:—यहाँ नकार के आगे आकार का प्रश्लेष करो और यह समास आ–अ।कारेण सहित'–आ सहित –आसहितोऽच् इति 'आच् सहित ८८ का 'शाक पार्थिवादित्वान्' लोप हो गया और आ अ का दीर्घ आच् बना अन आच् च हल् च + आज्झलौ यह द्वन्द्व समास कर दो। आ और अच् यह हलोंके साथ सवर्ण सज्ञक नही होत हैं। सवर्ण सज्ञा के निषेध का क्या फल हुआ इस वास्ते कहते है–दधि हरति इति। यहा पर हकार का अकारके साथ कण्ठस्थान विवृत प्रयत्न होनेसे तुल्यास्य करके सवर्ण सज्ञा होती है–और अणुदित्स० करके ग्राहकता होती है क्योंकि हकार अणो मे आ जाता है और अकार भी अणो में आ जाता है इस वास्ते यह दोनों एक दूसरे का ग्रहण कर लेते हैं तो दधि मे इकार का य् हो जाता क्योंकि अच् परे हकार है इसी प्रकार शीतल मे ई से श लियाजाता तो अक सव०से दीर्घ हो जाता। षष्ठम् मे ऋ से ष लिया जाता तो यण् हो जाता–इस वास्ते निषेध किया है। 'अन्यथा इति–यदि सूत्र नहीं करेंगे तो'दीर्घादिनामिव' जैसे ग्राहक शास्त्र से ह्रस्व अक् से दीर्घ अक् लिये जाते हैं वैसेही हकारादि भी लिये जायगे तो अच् धर्म वाले हो जायगे तो पूर्वोक्त दोष आवेगा इस वास्ते नाज्झलौ सूत्र किया है तथाहि इति–ग्राहक

शास्त्र दर्शयति ग्राहक शास्त्र को दिखाते हैं–

"अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः" इति०—अत्र प्रत्यय शब्देन 'प्रत्यय' इति संज्ञा न गृह्यते किन्तु–प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः। यौगिकस्यात्र ग्रहणम्–इत्याशयेनाह–अविधीयमान इति। यदि प्रत्यय शब्देन संज्ञा गृह्यते चेत्तदा इदम् ईश् इत्यत्रापिद्विमात्रिकादीनां ग्रहणं स्यात्। अविधीयमान इत्यस्य–अणि एवान्वयः। न तु उदिति। तेषां उदितां (कुचुटुतुपु आदिनाम) सर्वत्र विधीयमानाऽविधीयमानत्वात्। अविधीयमान अण् और अविधीयमान विधीयमान उदित्सवर्ण के ग्राहक हों। (जैसे इको यणचि) इत्यादिकों में इ से सब इकारों का ग्रहण है। उदित् चोः कु–इत्यादि। कुचुटुतुपु यह उदित् हैं।

वि०—अण् प्रत्याहार दो हैं पूर्व–ण् तक और पर–ण्–तक इनमें किसका ग्रहण किया जाय।

गु०—अत्रैवाण् परेण णकारेण। इसी में अण् पर णकार से लेना अन्यत्र नहीं। वि० क्या प्रमाण है। गु० वृद्धि रादैच् में तपर करण ही प्रमाण है क्योंकि आ के साथ तो तपर करण का कुछ फल है ही नहीं आ अणों में नहीं आता है ह्रस्व अकारादि अणों में आते हैं अत पूर्व ण तक अण् लेने में–ऐ औ का भी अणों में ग्रहण नहीं होगा। इस वास्ते तपर करण के अभाव में भी दीर्घ ही ऐ औ लिये जावेंगे प्लुत नहीं। पुन आत् का तपर करण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है अत्रैवाण्०। कोई इसमें 'उपसर्गादृति धातौ' इसके तपर करण को व्यर्थ करके इस प्रकार ज्ञापन करता है कि ऋ तो अणों में आवेगा नहीं जिससे तुम

दीर्घ ऋकार का ग्रहण करो पुन: तपर करण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है 'अत्रैवाण०'। यह तपर व्यर्थ नहीं है क्योंकि तपर करने से (तपरस्तत्कालस्य) इस सूत्र से ऋकार से लृकार का ग्रहण होता है और ऋति की अनुवृत्ति वासुप्या० में जाती है और उसका यह अर्थ है कि अवर्णान्त उपसर्गसे ऋकारादि अथवा लृकारादि सुप् धातु परे रहते वृद्धि हो तब प्र-लृकारीयति-प्राल्कारीयति यह बनता है इस वास्ते उपसर्गादृति० में तपरकरण किया है व्यर्थ नहीं है। इसी प्रकार (ऋतउत्) इसमे ऋत के तपर-करण को प्रमाण देते हैं यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि यहां भी तपरस्तत्कालस्य इस सूत्रसे-ऋकार से लृकार का ग्रहण होकर 'गम्लृ शब्द' का पष्ठी विभक्ति में (ऋतउत्) से उल् होकर गमुल् रूप हो इस वास्ते यह तपर करण व्यर्थ नहीं है। कदाचित् यह कहो कि 'उऋत्' उपधा के ऋ को ऋ हो 'अचीकृतत् यहाँ ऋको इसने ऋ किया तो ऋकार अणों मे आता नहीं इस वास्ते ऋ को ह्रस्व ऋ हुआ ही करेगा पुन तपरकरण व्यर्थ होकर ज्ञापन करेगा अत्रैवाण्। सो भी ठीक नहीं क्यों कि यह ऋकार तो विधीयमान है और विधीयमान सवर्ण का बोधक नहीं होता है इस वास्ते यह व्यर्थ नहीं है। दूसरे अजगम्लृपत् यहां (उऋत्)सूत्र का तपरकरण चरितार्थ है क्यों कि ऋ से लृ का भी ग्रहण होता है इस वास्ते यह भी तपरकरण व्यर्थ नहीं है 'वृद्धिरादैच्' का तपर करण ही प्रमाण देने योग्य है।

तदेवमिति० सो इस प्रकार अ इ उ ऋ यह १८ केबोधक हैं। यथेति-तैसे ही इकार उकार भी अठारह के बोधक हैं। ऋकार ति-ऋकार तीस का बोधक है। ऋ ल की सवर्ण संज्ञा होने से

एवं लृ० । इसी प्रकार लृ भी तीस का बोधक है । एचो द्वादशानाँ एच् बारह के बोधक हैं । एकार ऐकार का कण्ठ तालु स्थान और विवृत प्रयत्न है-तथा ओ औ का कण्ठ ओष्ठ स्थान और विवृत है-तो तुल्यास्य० सूत्र से सवर्ण संज्ञा होनी चाहिये इस वास्ते कहते हैं एदैतोरिति० ए ऐ और ओ औ आपस में सवर्ण नहीं होते हैं ।

वि०—इसमें क्या प्रमाण है कि यह सवर्ण नहीं होते हैं ।

गु०—ऐऔजिति सूत्रारम्भ-सामर्थ्यात्, यदि सवर्ण होते तो ए से ऐ और ओ से औ लिया ही जाता-फिर ऐऔच् पृथक् सूत्र क्यों किया यही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि ए ऐ, ओ औ सवर्ण नहीं होते हैं । तेनैचश्चतु र्विंशते संज्ञा स्युरिति नापादनीयम् । इसी वास्ते एच् २४ के बोधक है यह नहीं कहा ।

वि०—यदि ऐऔच् नहीं करते तो वर्णज्ञान कैसे होता कि ऐ औ भी वर्ण हैं ।

गु०—जैसे अ के सवर्ण आकार की सत्ता का ज्ञान होता है ऐसे ही ए ओ से ऐ औ का ज्ञान हो जायगा ।

वि०—अच्छा वृद्धिरादैच् मे क्या करेंगे यहां ऐच् पद है ऐच् तो रहे ही नहीं ।

गु०—यहां वृद्धिरादेङ् पढ़ देंगे तब दोष नहीं होगा ।

वि०—ए ओ की भी वृद्धि संज्ञा हो जायगी यह दोष होगा ।

गु०—तुम तो सवर्ण संज्ञा करने वाले देवता हो तुम ही कहो कि ए ओ ऐ औ की सवर्ण संज्ञा होने से ए ओ की वृद्धि संज्ञा क्यों नपों नहीं हुई जैसा तेरे कथन में दोष वैसा ही मेरे में भी

दोष है तो हम और तू बराबर ही हैं। यत्रोभयो समो दोषस्तत्र, प्रतिहारोपि तादृगेव।

वि०—अच्छा 'एचोयवायाव' यहां क्या करोगे।

गु०—यहां पर 'एकोऽयवायाव' पद देंगे और 'स्थानेऽन्तरतम' इस सूत्र से ए ओ इन सवृत वर्णों के स्थान में अय् अव् यह सवृत आदेश करेंगे और ऐ औ यह विवृत हैं इस वास्ते इन्होंको आय् आव् यह विवृत हो जायगें तो कार्य चल जायगा- क्योंकि ए ओ को सवृत माना है और ऐ औ को विवृत माना है कारण यह है कि अ उ से ओ और अ इ से ए बना है इस वास्ते सवृत भाग मिला है ऐ औ में विवृत आ का भाग है, तो कोई दोष नहीं है।

वि०—न य्वाभ्या० ऐच् यहाँ क्या करोगे ऐच् पढा है।

गु० यहां ऐ औ ऐसा स्वरूप से पढ देंगे यद्यपि एक स्थान को छोड कर दूसरे स्थान पर ऐ औ करने पडे तथापि 'ऐऔच्' का चकार व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि एदैतो रिति०।

वि०—गुरुजी आकार हकार का कण्ठ स्थान और विवृत प्रत्यन होने से 'तुल्यास्य०' से सवर्ण संज्ञा होकर और हकार अण् में आने के कारण अणुदित्स० से हकार अपने सवर्ण आकार का भी ग्रहण करेगा इस लिये विश्वपाभि में आ को 'हो ढ' से ढ होकर विश्वपढ्भि ढकार का संयोगान्तस्य से लोप होकर विश्वपभि, ऐसा होना चाहिये।

गु०—आकार अचों में, और हकार हलों में आने से नाज्झलौ सवर्ण संज्ञा का निषेध कर देगा इस वास्ते ह का ढ नहीं होगा

विश्वपाभि" में भी कोई दोष नहीं है।

वि०—गुरुजी अचों में तो वर्ण समाम्नाय पठित ह्रस्व अकार ाया है दीर्घ आकार तो आया ही नहीं जिसका "नाज्झलौ" से ,षेध करे इस वास्ते विश्वपाभि" में दोष है।

गु०—प्रिय पुत्र जैसे इकोयणचि मे इकार से सब दीर्घादि ार के लिये जाते हैं इसी प्रकार नाज्झलौ में भी अच् से दीर्घादि ाकार अणुदित्स० इस ग्राहक सूत्र से लिये जायगे इस वास्ते ष नही है।

वि०—'नाज्झलौ' में अच् से वर्ण समाम्नाय पठित ह्रस्व ाकारादि लिये जाते हैं दीर्घादि नहीं इस वास्ते ह्रस्व अकारादि र हल् इन्हों की सवर्ण सञ्ज्ञा का निषेध करेगा तो विश्वपाभि 'हो ढ" लगना चाहिये।

गु०—'नाज्झलौ'-वर्ण समाम्नाय पठित ह्रस्व अकारादिकों में क्यों लगता है।

वि०—पूर्व वर्णानामुपदेशस्तदुत्तरमित्सञ्ज्ञा तदुत्तरमादिरन्त्ये- र प्रत्याहार सिद्धिस्तदुत्तरकाला सवर्णसञ्ज्ञा तदुत्तरकाला ाुदित्स० इति ग्राहकता। प्रथम अइउण् इत्यादि वर्णो का देश है। फिर हलन्त्यम् से इत्सञ्ज्ञा होती है। फिर 'तुल्यास्य०' सवर्ण सञ्ज्ञा होती है। फिर सवर्ण सञ्ज्ञा होकर 'अणुदित्०' से ाहकता होती है। यह भाष्यकार का पञ्चधा महावाक्य है। पञ्चधा महावाक्य में सवर्ण सञ्ज्ञा का प्रतिपादन है अब ल्यास्य०' यह सवर्ण सञ्ज्ञा कब करेगा जब कि इसके निषेध सूत्र वाक्यार्थ प्रथम बन जायगा। "क्योंकि अपवादविषय परित्य- तत उत्सर्गोऽभि निविशते" अपवाद विषय को छोड़ कर फिर

उत्सर्ग शास्त्र का प्रवेश होता है– तुल्यास्य' यह उत्सर्ग, शास्त्र
नाज्झलौ अपवाद है–इस वास्ते प्रथम 'नाज्झलौ' के वाक्या
बोध की अपेक्षा 'तुल्यास्य' सूत्र को रहती है यदि 'नाज्झलौ' निषे
सूत्र का वाक्यार्थ बोध प्रथम नहीं करेंगे तो 'तुल्यास्य' सब
सवर्ण संज्ञा कर देगा तो भुक्तवन्त प्रति मा भुङ्क्था खाये हुये को
कहा जाय कि मत खा तो क्या हो सकता है वह तो भोजन कर चुक
निषेध करना व्यर्थ है। इस वास्ते 'नाज्झलौ' यह निषेध शास्त्र
विधि जो तुल्यास्य सूत्र है उसमें सकोच करा देगा कि अच् ह
से भिन्न जो बराबर प्रयत्न स्थान वाले वह सवर्ण संज्ञक हों
अब प्रथम नाज्झलौ का वाक्यार्थ हुवा। पश्चात् तुल्यास्य
हुवा तो नाज्झलौ के वाक्यार्थ बोध के समय 'तुल्यास्य०' उ
सवर्ण संज्ञा करने वाला है इसका वाक्यार्थ ही नहीं था फि
'नाज्झलौ' के अच् में कैसे प्रवृत्त होता इसी वास्ते भाष्यका
ने कहा है "न स्वस्मिन्नपि स्वाङ्गे" ग्राहक शास्त्र न तो अपने में
स्वाङ्ग (नाज्झलौ) में क्योंकि सवर्ण संज्ञा 'नाज्झलौ' के बाद
होती है। जब संज्ञा ही नहीं होवी तो ग्राहकता शक्ति भला कै
हो सकती है इस वास्ते कहते हैं 'नाज्झला विति०' 'नाज्झलौ'
अक्षर समान्नाय में पठित अकारादिकों की सवर्ण संज्ञा
निषेध करता है दीर्घ आकार और ईकार की नहीं इस वा
विश्वपाभि में गुरुजी महाराज दोष बना ही रहा।

गु०—प्रिय पुत्र तुमने 'नाज्झलाविति' निषेधो यद्यपि अक्ष
समान्नायिकानामेव' यहां पर 'यद्यपि' पर ध्यान नहीं दिया
आधा पाठ देख गये–इस वास्ते–ऐसा कहो कि यद्यपि 'नाज्झल
यह सूत्र अक्षर समान्नाय में पठित वर्णों की ही सवर्ण संज्ञा

निषेध करता है तथापि 'आकारस्यहकारो न सवर्णः' तब भी आकार का हकार सवर्ण नहीं होता है क्योंकि 'तत्राऽकारस्यापि प्रश्लिष्टत्वात् 'नाज्झलौ' में आकार का प्रश्लेष होने से अर्थात् 'नाज्झलौ' सूत्र में आकार का प्रश्लेष करो और यह समास करो 'आकारेण सहितोऽच्आच् आच्च हलूच आज्झलौ। दीर्घ आकार सहित अच् हलों के साथ सवर्ण नहीं होते हैं। इस वास्ते विश्वपाभि में कोई दोष नहीं है इस वास्ते कहते हैं 'तेन विश्वपाभिरित्यत्र 'होढ' इति ढत्व न भवति' 'नाज्झलौ' के निषेध होने पर विश्वपाभि मे 'होढ' से ढत्व नहीं हुआ।

वि०—महाराज आकार प्रश्लेष करने में प्रमाण क्या है।

गु०—बेटे 'काल समय वेलासु तुमुन्' इस सूत्र में आकारेण मात्र कर स का प नहीं किया यही प्रमाण है।

वि०—अच्छा गुरुजी हे यिया३ सो हे पिपा३ सो यहां 'गुरोरनृतो०' म आकार प्लुत हो गया और सूत्र में दीर्घ आकार का प्रश्लेष होने के कारण दीर्घ आकार हकार की सवर्ण संज्ञा का निषेध किया है इस वास्ते प्लुत आ३ और ह सवर्ण हो जायंगे इस वास्ते 'आदेश प्रत्यययो' से स को प होना चाहिये।

गु०—उक्त भाष्य प्रयोग से 'नाज्झलौ' में प्लुत आकार का भी प्रश्लेष है आश्च, आश्च औ आभ्या सहितोऽच् इति आच्। आच् हलूच आज्झलौ इति॥ ईषद्विवृतमूष्मणा विवृत स्वराणा' यह लघु कौमुदी के समान पाँच प्रयत्न मान लेवें तो 'सवर्ण संज्ञा का झगड़ा भी नहीं करना पड़े और 'नाज्झलौ' सूत्र की भी आवश्यकता नहीं रहे। परन्तु यह पाच प्रयत्न नहीं है दाढ होढे ढा

आचार्य पाणिनिजी 'नाज्झलौ' क्यों बनाते। इससे जानते हैं कि ऊष्माण ईषद्विवृत नहीं होते हैं किंतु विवृत ही होते हैं भाष्यकार ने जो खण्डन किया है- उसका तात्पर्य लोग नहीं समझते हैं उन्होंने केचित्का सिद्धान्त लेकर किया है अपना नहीं। दूसरे दीक्षित ने सूत्र की सत्ता में शंका समाधान किया सूत्र के अभाव में नहीं इस वास्ते दीक्षित जी की उक्ति सत्य है।

अनुनासिका० अनुनासिक और अननुनासिक भेद से य व ल दो प्रकार के हैं (य यँ ल लँ व वँ) तेन 'अणुदित्०' सूत्र में अण् पर णकार से लेने के कारण (ते) वे अनुनासिक (य व ल) दो दो के ग्राहक हैं। अननुनासिक से अनुनासिक का भी ग्रहण करना। जैसे (यवलपरे यवला वा) यहां अनुनासिक य व ल का ग्रहण होता है। 'तपरस्तत्का०', यहां तपर की आवृत्ति करना 'तपर तपर' 'अतो भिस् ऐस्' में तपर करण करने के कारण, त परो यस्मात् असौ तपर यह बहुव्रीही समास है और 'सहि वहोरोदवर्णस्य में सहि वहोरोदस्य करना था फिर अवर्ण ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि तात्पर तपर यह भी समास है। तकार है परे जिस से और तकार से परे उच्चार्यमाण वर्ण स्वसवर्ण सम काल का ही बोधक हो अधिक का नहीं हो। इस वास्ते अत् इत् उत् इत्यादि अपने सवर्ण एक मात्रिक छ छ के बोधक हो गये ऋ ऌ सवर्ण होने से ऋ बारह का बोधक हुआ यह 'अणुदित्स०' का बाधक है।

वृद्धिरा० । आत् और ऐच् वृद्धि संज्ञक हों। ऐच् में भत्वान् कुत्वाभाव हो गया।

अदेङ्० । अत् एङ् गुण संज्ञक हों।

भूवाद० । भूश्च वाश्च भूवौ । आदिश्च आदिश्च=आदि एक शेष एक आदि प्रभृति का वाचक है उसको भू के साथ जोड़ दिया तो भू आदि दूसरा सादृश्य वाचक है उसको वा धातु के साथ जोड़ दिया तो वादि हुआ । अत भू प्रभृति वा सदृश शब्द स्वरूप धातु सञ्ज्ञक हों । सादृश्य च क्रिया वाचकत्वेन अर्थात् वा यह क्रिया वाचक है । इस वास्ते वृत्ति में क्रिया वाचक कहा —

वि०—गुरु जी सूत्र में भू ग्रहण क्यों किया ।

गु०—यदि भू ग्रहण नहीं करेंगे तो हिरुक् पृथक् की भी धातु सञ्ज्ञा हो जायगी ।

वि०—तो अच्छा फिर भू ही ग्रहण कर लेंगे वा, नहीं करेंगे ।

गु०—यदि वा ग्रहण नहीं करोगे तो या पर्यासि में या की धातु सञ्ज्ञा हो जायगी ।

प्राग्रीश्व०—ईश्वरघटितसूत्रमभिव्याप्य प्राक् निपाता इति पदद्वयं अधि क्रियते ।

चादयो०—सत्व द्रव्य तद्भिन्नमद्रव्यम् जिसमें लिङ्ग संख्या का अन्वय हो वह द्रव्य तद्भिन्न अद्रव्यम् । अर्थात् अव्यय पठित चादि निपात सञ्ज्ञक हों ।

प्रादय०—प्रादि भी निपात सञ्ज्ञक हों ।

उपसर्गा० गति०—प्रादि क्रिया के योग में प्रथम निपात सञ्ज्ञक होकर उपसर्ग और गति सञ्ज्ञक हों ।

नवेति०—शास्त्रे शब्दा शब्दपरा लोके शब्दा अर्थ परा । इस भाष्य से न और वा विभाषा सञ्ज्ञक हों यह अर्थ पाया था

इस वास्ते आचार्य ने "इति" शब्द अर्थ का पर्याय वाचक दिया है तो यह अर्थ हुआ न इति वा इति अर्थात् निषेध और विकल्प विभाषा सञ्ज्ञक हों।

वि०—गुरु जी विभाषा के प्रकार की होती हैं।

गु०—चेटा विभाषा तीन प्रकार की हैं एक तो प्राप्त विभाषा दूसरे अप्राप्त विभाषा तीसरे प्राप्ताप्राप्त विभाषा 'विभाषा ङि श्योः' में प्राप्त विभाषा है क्योंकि यहां पर 'अल्लोपोऽनः' करके अन् के अकार का लोप प्राप्त था इस सूत्र ने प्राप्त में विभाषा की है। 'विभाषा तृतीयादिष्वचि' में अप्राप्त विभाषा है। क्योंकि यहा पर क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव किसी सूत्र से प्राप्त नहीं था इस सूत्र करके विकल्प से प्राप्त हुआ है अत यह अप्राप्त विभाषा है 'विभाषा श्वेः' में प्राप्ताप्राप्त विभाषा है यह सूत्र प्राप्ताप्राप्त में ही लगता है।

स्व रूप०—'अग्नेर्ढक्' यहा अग्निवाचक से ढक् हो यह अर्थ होकर वन्हि शब्द से भी ढक् होना चाहिये इस वास्ते कहते हैं 'स्वरूप' इति शब्द का स्वरूप सञ्ज्ञि होता है अर्थात् शब्द अपने ही रूप का बोधक होता है 'अग्नेर्ढक्' में अग्नि शब्द (अ ग् न् इ) एतदानुपूर्विक का बोधक होता है पर्याय का नहीं। अच्छा तो वृद्धि-रेचि' में वृद्धि शब्द अपने रूप का बोधक हो जायगा और कृष्ण एकत्वम् यहा अ ए को वृद्धि आदेश होकर कृष्ण वृद्धि कत्व होना चाहिये इस वास्ते कहते हैं शब्दशास्त्रे० शब्द शास्त्रमें (व्याकरण) में जो सञ्ज्ञा है उसे छोड कर।

येन विधिरिति०—येन यह करणमें तृतीया है (करण चाप्रधानम्) अप्रधानच विशेषणम्। यत्र विशेषण तत्र विशेष्यस्याध्याहार

भूवाद० । भूश्च वाश्च भूवौ । आदिश्च आदिश्च=आदि एक शेष एक आदि प्रभृति का वाचक है उसको भू के साथ जोड़ दिया तो भू आदि दूसरा सादृश्य वाचक है उसको वा धातु के साथ जोड़ दिया तो वादि हुआ । अत भू प्रभृति वा सदृश शब्द स्वरूप धातु सञ्ज्ञक हों । सादृश्य च क्रिया वाचकत्वेन अर्थात् वा यह क्रिया वाचक है । इस वास्ते वृत्ति में क्रि या वाचक कहा —

वि०—गुरु जी सूत्र मे भू ग्रहण क्यों किया ।

गु०—यदि भू ग्रहण नहीं करेगे तो हिरुक् पृथक् की भी धातु सञ्ज्ञा हो जायगी ।

वि०—तो अच्छा फिर भू ही ग्रहण कर लेगें वा, नहीं करेंगे ।

गु०—यदि वा ग्रहण नहीं करोगे तो या पश्यसि में या की धातु सञ्ज्ञा हो जायगी ।

प्राग्रीश्व०—ईश्वरघटितसूत्रमभिव्याप्य प्राक् निपाता इति पदद्वय अधि क्रियते ।

चादयो०—सत्व द्रव्य तद्भिन्नमद्रव्यम् जिसमें लिङ्ग सङ्ख्या का अन्वय हो वह द्रव्य तद्भिन्न अद्रव्यम् । अर्थात् अव्यय पठित चादि निपात सञ्ज्ञक हों ।

प्रादय०—प्रादि भी निपात सञ्ज्ञक हों ।

उपसर्गा० गति०—प्रादि क्रिया के योग में प्रथम निपात सञ्ज्ञक होकर उपसर्ग और गति सञ्ज्ञक हों ।

नवेति०—शास्त्रे शब्दा शब्दपरा लोके शब्दा अर्थ पराः । इस भाष्य से न और वा विभाषा सञ्ज्ञक हों यह अर्थ पाया था

इस वास्ते आचार्य ने "इति" शब्द अर्थ का पर्याय वाचक दिया है तो यह अर्थ हुआ न इति वा इति अर्थात् निषेध और विकल्प विभाषा सञ्ज्ञक हों।

वि०—गुरु जी विभाषा के प्रकार की होती हैं।

गु०—बेटा विभाषा तीन प्रकार की हैं एक तो प्राप्त विभाषा दूसरे अप्राप्त विभाषा तीसरे प्राप्ताप्राप्त विभाषा 'विभाषा ङि श्योः' में प्राप्त विभाषा है क्योंकि यहा पर 'अल्लोपोऽनः' करके अन् के अकार का लोप प्राप्त था इस सूत्र ने प्राप्त में विभाषा की है। 'विभाषा तृतीयादिष्वचि' में अप्राप्त विभाषा है। क्योंकि यहा पर क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव किसी सूत्र से प्राप्त नहीं था इस सूत्र करके विकल्प से प्राप्त हुआ है अत यह अप्राप्त विभाषा है 'विभाषा श्वेः' में प्राप्ताप्राप्त विभाषा है यह सूत्र प्राप्ताप्राप्त में ही लगता है।

स्व रूप०—'आग्नेयढक्' यहा अग्निवाचक से ढक् हो यह अर्थ होकर वन्हि शब्द से भी ढक् होना चाहिये इस वास्ते कहते हैं 'स्वरूप' इति शब्द का स्वरूप सञ्ज्ञि होता है अर्थात शब्द अपने ही रूप का बोधक होता है 'आग्नेयढक्' में अग्नि शब्द (अ ग् न् इ) एतदानुपूर्विक का बोधक होता है पर्याय का नहीं। अच्छा तो वृद्धि-रैचि' से वृद्धि शब्द अपने रूप का बोधक हो जायगा और 'कृष्ण एकत्वम्' यहा अ ए को वृद्धि आदेश होकर कृष्ण 'वृद्धि फत्व होना चाहिये इस वास्ते कहते है शब्द शास्त्रे० शब्द शास्त्रमें (व्याकरण) में जो सञ्ज्ञा है उसे छोड़ कर।

येन विधिरिति०—येन यह करणमें तृतीया है (करण चाप्रधानम्) अप्रधानच विशेषणम्। यत्र विशेषण तत्र विशेष्यस्याध्याहारः

विशेषण तदन्त का बोधक हो अर्थात् विशेषणके आगे तद
तदन्त जोड दो और स्वरूप का भी बोधक हो जैसे 'जरा
जरस्यान्यतरस्याम्' यहा जरा विशेषण अङ्ग विशेष्य इस व
जरा के आगे तदन्त लगादो जरा शब्दान्त अङ्ग को जरस् आ
हो।

समास०। समास और प्रत्यय विधि मे निषेध कहना
द्वितीया श्रिता ती० यहाँ पर तदन्त नहीं होगा, अत कष्ट परमश्रि
में समास न होगा और 'नडादिभ्य फक्' से सूत्र नाडमें फक् न हो

उगिद्वर्ण०—यह वार्त्तिक ऊपर के वार्त्तिक का निषेध क
है अर्थात् उगित् और वर्ण ग्रहणमें तदन्त विधि होजाती है।
'उगितश्च' 'एरच्' इत्यादि।

विराम०। वर्णों का अभाव अवसान सञ्ज्ञक हो।

पर सन्नि० वर्णों की अत्यन्त सन्निधि सहिता सञ्ज्ञक ।
अर्धमात्रातिरिक्तकाल व्यवायेन रहित । आधी मात्रा से अ
व्यवधान नहीं होना चाहिये।

सुप्तिङ्०। सुबन्त और तिङन्त पद सञ्ज्ञक हो। प्रत्यय ग्र
परिभाषा से तदन्त विधि हो जाती फिर अन्त ग्रहण व्यर्थ है
ज्ञापन करता है। सञ्ज्ञा विधौ प्रत्यय ग्रहणे तदन्त ग्रहण ना
कि सञ्ज्ञा विधि में प्रत्यय ग्रहण में तदन्त ग्रहण नहीं हो
हलोऽन०। न अन्तरो येषा ते अनन्तरा हल् सयोग स
होते हैं जैसे हल् 'अनन्तरा', जिन्होंमें व्यवधान न हो। व्यव
सजातीय का नहीं होता है किन्तु विजातीय का होता है तो
के विजातीय स्वर होते हैं इस वास्ते अजभि यह फलित हु
अचों से रहित हल् सयोग सञ्ज्ञक हों। अज्भि यहा 'चो कु

त्व नहीं होता है क्योंकि अगृभि करने में सन्देह हो जाता है कहीं अक् तो नहीं लिये जाते हैं अत स्पष्टार्थ के वास्ते है।

ह्रस्व०। ह्रस्व लघु सज्ञक हो। सयोगे०। सयोग परे रहते त्व भी गुरु सज्ञक हो। दी०। दीर्घ भी गुरु सज्ञक हो।

इति संज्ञा प्रकरणम्।

सन्धि कार्य का उपयोगी सञ्ज्ञा प्रकरण समाप्त हुआ।

अथ परिभाषा प्रकरणम्

वि०—गुरु जी परिभाषा सूत्र कहां लगते हैं।

गु०—येदा यह वहा लगते हैं जहाँ साक्षात् स्थानी नहीं हो और जहां अनुवृत्ति नहीं आती हो।

इको गु०—इक यह षष्ठ्यन्तका अनुकरण लुप्त प्रथमा है। इस स्से सु परे न होने के कारण अं व सन्तस्य० करके दीर्घ नहीं हुआ हाँ गुण वृद्धि की आवृत्ति करना और एक को "अर्थवशाद्विभ क्ते परिणाम" इससे तृतीयान्त बना लेना। अर्थ—गुण + वृद्धि शब्दाभ्यां यत्र शास्त्रे गुणवृद्धी विधायके प्रयोजके पदे वर्तेते तत्र इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते। यथा०—'सार्व धातु०' मृजेर्वृद्धि त्यादिकों में इक् की उपस्थिति हो गई।

अचश्च। ऊकालो० सूत्र से ह्रस्वादि की अनुवृत्ति करके उसे तृतीयान्त बनालो। ह्रस्व दीर्घ प्लुत शब्दों से जहां अच् को कार्य किया जाय वहां 'अच्' इस षष्ठ्यन्त पद की उपस्थिति करना। —'ह्रस्वोनपु०' 'शमा म०' 'दूराद्धूते च' इत्यादि।

आद्यन्तौ० । टश्च कश्च टकौ । टकौ इतौ ययो स्तौ।
आदि में अन्वय और कित् का अन्त में अन्वय करना
सामर्थ्य नहीं होने से समास नहीं होना चाहिये 'सौत्रत्वात्
अथवा समुदाय टकितौ का समुदाय आद्यन्तौ में अन्वय
समास हो गया । ङ्णोकुक्० इत्यादि में 'षष्ठी स्थाने' से
उपस्थिति होकर ङ्णु के स्थान में कुक् टुक् आदेश हो
प्राप्त था इस वास्ते उसका यह बाधक हो गया ।

मिदचो० अच् यह निर्धारण में षष्ठी है । इ सवात
मध्ये यह अर्थ हो गया । अचों के मध्य में जो अन्त अ
परे उसी का अन्ताऽवयव मित् हो 'षष्ठी स्थाने' प्रत्यय
इन्हों का बाधक है । मुच्चतिमे फलाभावात् अन्तावयवं नहीं
'षष्ठी स्थाने' स्थानेन योगोऽस्या इति । षष्ठी स्थान शब्द
योग करती है । कौन षष्ठी ? 'अनियमे नियम कारिणी प
अनियम में नियम करने वाली परिभाषा होती है—इस वास्ते
धारित सम्बन्ध० यह फलित हुआ । अर्थात् जिसका कोई
निर्धारण नहीं किया ऐसी षष्ठी स्थान में जानना । 'अ
गोह' यहा 'उपधाया' यह निर्धारित है—इस वास्ते परिभा
लगेगी । 'इकोयणचि' इत्यादि में प्रवृत्त होगी । स्थान च
'स्थान से प्रसंग लेना जैसे 'दर्भाणा स्थाने शरैः प्रस्त
दर्भों के अभाव में शरों का प्रयोग मीमांसा कार ने लिखा
प्रकार से व्याकरण में भी स्थान शब्दका प्रसंग अर्थ है ।
वैयाकरणों के यहां शब्द अनित्य नहीं है 'इकोयणचि'
के उच्चारण प्रसङ्ग मे यण् का उच्चारण करना यह अर्थ है
शब्द नित्य हैं ।

ऽन्त० अनेक वर्णों की प्राप्ति रहते सदृशतम, आदेश हो। ष्ठी स्थाने० से स्थाने की अनुवृत्ति आजायगी फिर स्थाने र्थ होकर ज्ञापन करता है। यत्रानेक वि० जहाँ अनेक सादृश्य हो वहां स्थान कृत सादृश्य बलवान होता है। चिता इस लुट् में सार्वधा० से प्रमाण कृत सादृश्य मान मात्रिक है तो च भी एक मात्रिक गुण पाया इस वास्ते पा ने स्थान कृत (तालुस्थानकृत) सादृश्य मान कर ण कर दिया।

ऽन्त०। इसमें तमप् ग्रहण क्यों किया। अनेक वर्णों हते (अन्तर) सादृश्य आदेश हो। ऐसा करने से जाता। पुन तमप् ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता प्रकार का सादृश्य होता है १ स्थानकृत, २ प्रयत्नकृत, , ४ प्रमाण कृत। क्रम से उदाहरण—दृध्यत्र यहां तालु ग-य होगया। वाग्घरि ह का घ। शृगाल वाचक शृगाल वाचक क्रोष्टृ। अमू मे अदसोसे० से ह्रस्व का ा दीर्घ।

—आदे परस्य में पर ग्रहण नहीं करेंगे तस्मादि० के देंगे। 'तस्मादित्युत्तरस्यादे' ऐसा करेंगे। और निर्देश करके क्रियमाण कार्य पर के आदि को हो करने से कार्य चल जायगा फिर पृथक् सूत्र क्यों

—पर ग्रहण न करने पर अष्टन् शब्द से जस् (अष्टन) से आ—किया अष्टा जस् अब यहां 'अष्टाभ्य औश्' जस् शस् को औश् हो। इससे जस् को औश् पाया

ता किस को हो 'अलोऽन्त्य० करके अन्त्य स को औश् पा
इसको बाध कर अनेकाल० करके सारे जस् को पाया और आ
परस्य० करके आदि ज को पाया तब विप्रतिषेधे० से परत्वा
आदे पर स्य को बाध कर अनेकाल्० से सारे जस् को औ
होकर और वृद्धि होकर अष्टौ बनता है। अब तस्मादित्युत्तरस्या
सूत्र करने पर परत्वात् अनेकाल० सूत्र आदे परस्य को न
बाधेगा क्योंकि तस्मादि० ६० का है और अनेकाल० ५५ का
तो परत्वात् तस्मादि० हुआ करेगा। अत अष्टौ सिद्ध न हो
इस वास्ते पर ग्रहण और पृथक् सूत्र करना आवश्यक है।

वि०—हम तस्मादित्युत्तरस्यादे को अनेकाल्० से पूर्व पढ
तब तो दोष न होगा।

गु०—मिला करे पूर्व पढने में भी दोष होगा क्यों
तस्मादित्यु० आगम विषयक भी प्रवृत्त होता है आदे परस्य आग
में लगता नहीं है। साथ मे पढने पर 'आदे' यह अश आगम
भी लगेगा—जैसे 'आज्जसेरसुक्' यह देवास में असु
आगम करता है तो यह असुक् स् के अन्त मे होता है देवा
असुक फिर 'उकावितो' देवास् अस् देवास ऐसा बनता
अब आदे अश से स के आदि में होगा तो रूप अनिष्ट होगा इ
वास्ते पृथक् किया है।

आचार्य ने अधिकार सूत्रों पर स्वरित का चिन्ह किया
जैसे अङ्गस्य ॐ अंत उसी प्रतिज्ञा को कहते हैं।

स्वरित०—स्वरित प्रतिज्ञा वाला अधिकार जानना इस अर्थ
स्वरितेन तृतीयान्त है। कहा तक अधिकार जाय इस ज्ञान
वास्ते जहा तक जाता है वहा पर भी स्वरित चिन्ह किया है। (त

ते सप्तमी। न अव्यय। अधिकार प्रथमा। तो अर्थ हुआ
ते दृष्टे अधिकारो निवर्तते।

अष्टाभ्य औश् इत्यादौ आदे परस्य इत्येतदपि परत्वात्०
पर परत्वात् आया है तो यह बात सिद्ध हो गई कि पूर्व से
बलवान् है अब पर से कौन बलवान् इसको कहते हैं। पर
॥०।

अब शंका हुई है कि अन्तरङ्ग क्या, इस वास्ते कहते हैं।

असिद्ध व०। क्या यह सर्वत्र लगता है। नहीं। क्योंकि इसकी
नेका अकृतव्यू० है। इस वास्ते तीन परिभाषा यहां
वी हैं।

इति परिभाषा प्रकरणम्।

अथ अच् सन्धि

इको यणचि–इसमें इक यह अनिर्धारित सम्बन्ध विशेषा
है क्योंकि इक् का किसी के साथ सम्बन्ध नहीं है जैसे
गो कुक् टुक् शरि मे 'आद्यन्तौ टकितौ' इस सूत्र से ह ण के
य कुक् टुक् का अन्तावयव सम्बन्ध निर्धारित किया है वैसा
नहीं है इस वास्ते 'पष्ठी स्थाने योगा की उपस्थिति होने से
ान पद की उपलब्धि हो गई और अचि यह औपश्लेषिकी
मी है संहितायां का अधिकार है, तो क्या अर्थ हुआ कि—
ुपश्लिष्टस्य इक स्थाने यण स्यादचि संहितायां विषय भूतायाम्
य के समीप में इक् के स्थान में यण हो, संहिता का विषय
त पर अन सुधी उपास्य यहां पर पर सन्निकर्ष इसमें ध में

ई की और उपास्य के उ की संहिता है स में उ की ध मे ई की संहिता सज्ञा नहीं है क्यों 'अर्ध मात्रातिरिक्त काल व्यवायाऽभाव संहिता अर्ध मात्र से अतिरिक्त के व्यवधान मे संहिता सज्ञा नहीं होती है यह भाष्य है। और एक वर्ण उच्चारण करने के बाद जब दूसरे वर्ण का उच्चारण करते हैं तब मध्य मे अर्धमात्रा उच्चारण की मुख मे रहती है अन्यथा वर्णों का उच्चारण ही नहीं हो सकता अतएव सुधी उपास्य में सकार वृत्ति उकार ० उच्चारणानन्तर जब धी का उच्चारण करते हैं तब अर्ध मात्रा तो उच्चारण की मुख में रही और आधी मात्रा ध की है इस वास्ते एक मात्रा का मध्य मे व्यवधान हो गया और उपास्य के उ का तथा प में आ का उच्चारण करते हैं तब भी एक मात्रा का व्यवधान हो जाता है इस वास्ते संहिता सज्ञा नहीं होती है केवल ध मे ई की और उपास्य के उ की ही संहिता सज्ञा है। जब सुधी उपास्य में इको यणचि लगावेंगे तो उ को अच् मान कर ई को यण् पाया और ई को अच् मानकर उ को यण् पाया तो किस को यण् करें पूर्व को अथवा पर को तो अनियमे नियम कारिणी भाषा अनियम में नियम करने वाली परिभाषा होती है तब इकोयणचि इस सूत्र में तस्मिन्निति० इस परिभाषा की उपस्थिती करना। और यह परिभाषा नियम करती है 'पूर्वस्य परस्य च कार्ये प्राप्ते पूर्वस्यैव 'व्यवहिते अव्यवहिते च कार्ये प्राप्ते अव्यवहितस्यैव'। यहां अव्यवहितांश की उपस्थिती नहीं करना किन्तु पूर्वांश की उपस्थिती करना तो 'इको यणचि सूत्र का क्या अर्थ हुआ कि "पूर्वस्य इक स्थाने यण् स्यादचि परे संहितायां विषय भूतायाम्। पूर्व इक् के स्नथा

में यण् हो अच् परे रहते संहिता के विषय में अन्यवहिताश का फल उन सूत्रों में है जहां संहिता का अधिकार नहीं है जैसे 'सार्व धातुकार्ध धातुकयो , इत्यादि ।

वि०—यह अर्थ करने पर भी तो दध्यानय में तो यण् हो जायगा परन्तु सुधी + उपास्य यहां नहीं होना चाहिये क्योंकि "इको यणचि में ह्रस्व इकार है और सुधी में दीर्घ ईकार है।

गु०—बेटे यहा अणुदित्स० सूत्र लगाने से ह्रस्व इकार से दीर्घ ईकार भी लिया जाता है।

वि०—अच्छा गुरु जी ह्रस्व इकार से तो दीर्घ ईकार का ग्रहण हो जायगा परन्तु ह्रस्व उकारादिकों से दीर्घ ऊकारादिकों का ग्रहण नहीं होन चाहिये क्योंकि 'उचारित एव शब्द प्रत्यायको भवति नानुचारित इति अणुदित्सूत्र भाष्यात्" उचारण किया हुवा शब्द ही प्रत्यायक होता है अर्थात् इकार ही साक्षात् पठित होने से दीर्घ ईकार का निश्चायक होगा उकार नहीं होगा तो वधू ईश· यहा यण् नहीं होना चाहिये।

गुरु—"प्रत्याहारेषु तद् वाच्य वाच्येति निरूढा लक्षणा" प्रत्याहारों में तद्वाच्य + वाच्य में निरूढा लक्षणा होती है। प्रत्याहार कौन इक् तद् वाच्य कौन इ उ ऋ लृ तद् वाच्य कौन दीर्घ ईकार दीर्घ ऊकारादि इनमें लक्षणा करलो।

वि०—लक्षणा में क्या प्रमाण।

गु०—"स्वादिभ्य" यह निर्देश ही प्रमाण है। क्योंकि यहा दीर्घ ऊकार को आचार्य ने यण् किया है यदि लक्षणा नहीं होती तो यण् कैसे करते इसी तात्पर्य को लेकर दीक्षित जी लिखते हैं ।"

द्वित्व निषेध की आशंका नहीं करना "अनल्विधौ इस द्वितीय वाक्य द्वारा निषेध होने से —

नोट—जब सूत्र में निषेध और विधि वाक्य एक साथ पढे हैं तो यह शंका और समाधान करने अयुक्त हैं दूसरे अनचिचेति द्वित्व निषेधो इसमे च भी साथ में लिख दिया यह और भी महान् अनर्थ है क्योंकि "अनचि" यह निषेध वाक्य है इसी को लिखना उचित है "च" का लिखना सर्वथा अनुचित है क्योंकि "च" तो सूत्र में विध्यर्थ है मेरी सम्मति में यह पंक्ति इस तात्पर्य को लेकर लिखी है कि "अनल्विधौ" में अल परस्य विधि अल्विधि न अल्विधि अनल्विधि तस्यात् अनल्विधौ यह पंचमी समास मानेंगे तब सुध्य् उपास्य में निषेध नहीं होगा क्योंकि यहां अल् से पर विधि नहीं है किन्तु पूर्व को विधि है इस वास्ते कहते हैं "अनेनेह यकारस्य०" अत्र सूत्रे अनल इति पंचम्यन्तमेव पठनीयम् विधि ग्रहणं व्यर्थं सज्ज्ञापयति अत्रअेला विधि अलोविधि अलोविधि अलिविधि इति समास चतुष्टयम् इत्याशयेनाह "अनल्विधाविति०" षष्ठी समासादिति भाव। अच्छा इससे न हो "अचः परस्मिन् पूर्व विधौ" आदेश स्थानि वृत्ति धर्मवाला हो स्थानि भूत अच् से जहां पूर्वत्वेन जो दृष्टि है उसको जहां विधि कर्तव्य हो। इस करके स्थानिवद्भाव करेंगे इसी वास्ते कहते हैं अल्विध्यर्थमिदम् यह अल्विधि लगने के वास्ते सूत्र है क्योंकि अनल्विधौ निषेध प्रत्यत्तिं न्याय से स्थानि वदादेशों का ही करता है इसका नहीं। इस सूत्र में विधि ग्रहण क्यों किया क्योंकि पूर्वस्य कहने से ही विधि की उपलब्धि हो जायगी पुनः व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि यहां दो समास हैं पूर्वस्य विधि पूर्व

विधि । पूर्वस्मात् विधि पूर्व विधि । पचम्यन्त का फल आगे कहेंगे । इति स्थानि वन् भावे प्राप्ते । इति माने अनल्विधि यह निषेध न होने से स्थानिवद्भाव प्राप्त रहा तब सूत्र लगा ।

"न पदान्त०" "द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पद प्रत्येकमभि सम्बध्यते" इससे विधि का सबके साथ सम्बन्ध है । पद के अन्तावयव विधि कर्तव्य रहते द्विर्वचन विधि वर् परे लोप विधि यलोप विधि स्वर विधि सवर्ण विधि अनुस्वार विधि जश् विधि चर विधि यह विधि कर्तव्य रहते आदेश स्थानि वत् नहीं । इति स्थानिवद्भाव निषेध । इस करके पदान्त विधि होने से स्थानिवत् का निषेध हो गया । सुध् ध् य् उपास्य, सुध्य् उपास्य यह दो रूप बन गये । तब सूत्र लगा "झला जश०" स्पष्टम् । इसका अर्थ सूत्र में स्पष्ट है, इति धकार स्येति० इस करके धकार का दकार होगया । प्रमाण कृत सादृश्य मानकर अर्ध मात्रिक धकार के स्थान में सम्पूर्ण जश् प्राप्त रहे । इस वास्ते कहते हैं इति धकार (स्ये० धकार) को दकार ही होना है "यत्रानेक विधमान्तर्य०" इस न्याय से । "अद-र्शन मिति०" स्थाने की अनुवृत्ति करना और स्थान नाम है प्रसग इस वास्ते प्रसक्त स्येति फलितम् । शास्त्र से अथवा अर्थ से विद्य-मान का अदर्शन लोप सञ्ज्ञक हो । शास्त्र से लोप सुध्य् उ पास्य अथ में "प्रासादात्प्रेक्ष्यते" यहां अर्थ से अदर्शन है इस वास्ते प्रासादात् में "ल्यब्लोपे पचमी" से पचमी होगई । "संयोगा-न्तस्य संयोगान्त जो पद उसका लोप हो सम्पूर्ण का लोप पाया । तब इस सूत्र में सूत्र लगा "अलोऽन्त्यस्य" इसमें अन्त्य पद की उपस्थिति होगई, तब यह अर्थ हुआ संयोगान्त जो पद उसके अन्त्य का लोप हो इति य-लोपे प्राप्ते इससे य् लोप पाया ।

"यण प्रति०" यण् लोप का निषेध कहना। इसमें निषेध हो गया। यदि "संयोगान्त" में झल् की आनुवृत्ति करें तो यह अर्थ हो सयोगान्त झल् का लोप हो तब वार्त्तिक नहीं करना चाहिये। द्वित्व व्यवस्था को दिखाते हैं। "यणोमयो०" इसमें यण यह षष्ठ्यन्त और पञ्चम्यन्त दोनों है। 'एवमय' यह भी षष्ठ्यन्त और पञ्चम्यन्त है। विनिगमना विरहात् प्रमाण का अभाव, होने से। इस वास्ते यह अर्थ हुवा यण् से परे मय को द्वित्व हो और मय से परे यण् को द्वित्व हो इससे विकल्प सिद्ध होगया। विकल्प विधायकों में करने वाले की इच्छा है चाहे द्वित्व करे अथवा नहीं करे। अब दो ध् वाले में "यणोमयो से० ध को द्वित्व किया तो दो ध् दो य् हो गये दोनों नहीं लगाये तो एक ध् और एक य् हुवा और अनचिच लगा दिया "यणोमयो०" नहीं किया तो दो ध् एक य् हुवा और यणो मयो को लगा दिया अनचिच नहीं लगाया तब एक ध् दो य् हो गये। इस प्रकार चार रूप हो गये। विसर्गादि द्वित्व किये जाय तो अधिक रूप बन जायगे परन्तु यहा मुख्य द्वित्व को ही आचार्य ने दिखाया है। इसी वास्ते कहते हैं "मय इति पचमी०" मय को पचमी मान कर और यण् को षष्ठी मान कर यकार को द्वित्व हो गया, और अपी शब्द से धकार को भी "तदिह०" इस कारण से धकार यकार को द्वित्व विकल्प होने से चार रूप बन गये उसी को दिखाते हैं एक ध मेकयम् दोनों नहीं लगायेंगे तो द्विध द्वियम् दोनों लगा दिये तो द्विधमेकयम्अनचिच् लगाने से एक ध द्वियम् यण्-मय० लगाने से, वि०—सुधी + उपास्य. यहा इको सवर्णे० से ह्रस्व क्यों नहीं हुवा। गु०—न समासे इससे निषेध होगया।

वि०—प्र जा न भू सुधियो निषेध क्यों नहीं होता।

गु०—सुप् परे होने पर निषेध करता है अत एक अग होना चाहिये यहा दो हैं।

वि०—ध्यायते सम्प्रसारणाच से ध्यै धातु से धी बना है तो पास्य के य को सम्प्रसारणाच करके पूर्व रूप होना चाहिये।

गु०—सम्प्रसारण पूर्व रूपत्वे समानांग ग्रहण कर्तव्यम्। सम्प्रसारण और पूर्व रूप कर्तव्य रहते समानाग का ग्रहण होता है इस वार्तिक से निषेध होगया।

'नादिन्या क्रोशे०"। यहा आदिनी यह अयन्तानुकरण लुप्त सप्तमी है।

वि०—तब यहा इदूती च सप्तम्यर्थे से प्रकृति भाव हो जाय और सन्धि भी नहीं होगी।

गु०—यहां सौत्रत्वात् सन्धि करलो भय् से परे पुत्र के अवयव यण् को द्वित्व हो आदिनी शब्द परे रहते और निन्दार्थ गन्यमान रहते इस प्रकार की निन्दा स्त्रियों में होजाय पायी जाती है इस वास्ते स्त्री विषयक ही उदाहरण देते हैं पुत्र मत्तु तथा सा पुत्रादिनी (अनचिचेत्यस्यापवाद) आक्रोशे कि आक्रोश क्यों कहा "यथार्थ कथने०" जहा यथार्थ ही कथन है निन्दा नहीं है वहा नहीं हो इस वास्ते किया है पुत्रादिनी सर्पणी वा वाघ्नी जिन्हों को धर्म शास्त्र प्रतिपादित धर्मों का ज्ञान हो वही निन्दा के पात्र हैं। तत्परे च यहा तच्छब्द पूर्व परामर्शक है इस वास्ते आदिनी शब्द लिया जायगा। स आदिनी शब्द परो यस्मात् असौ तत्पर तस्मिन्। वह आदिनी शब्द है परे जिससे ऐसा पुत्र शब्द परे रहते प्रथम पठित पुत्र शब्द के परम को द्वित्व हो।

"वाहतजग्धयो" हत और जग्ध शब्द परे रहते पुत्र के अवयव यर् को विकल्प करके द्वित्व हो।

वि०—अनचिच इससे द्वित्व विकल्प हो जायगा फिर यह वार्तिक क्यों किया?

गु०—यह वार्तिक व्यर्थ होकर नियम करता है पुत्र शब्द के अवयव यर् को द्वित्व होय तो क्तान्त हत्-जग्ध शब्द ही परे रहते हो अन्यत्र न हो पुत्र गत इत्यादिकों मे नहीं हुवा।

वि०—हम विपरीत नियम करेंगे हत जग्धयो परयो. पुत्र शब्दस्यैव।

गु०—विपरीत नियम नहीं होता है
दुहित्र जग्ध इस भाष्योदाहरण से।

त्रिप्रभृतिपु०। तीन से आदि वर्ण जहां संयुक्त हो वहा अच् से परे यर् को विकल्प से द्वित्व हो। यद्यपि इस सूत्र में न की अनुवृत्ति आती है, परन्तु निषेध विकल्प और विधि विकल्प में कुछ विशेष फल नहीं इस वास्ते न की अनुवृत्ति नहीं की। इन्द्र इति यहां "नन्द्रा संयोगादय" यह निषेध नहीं लगता है अनन्तर स्य विधिर्वा भवति प्रति षेधो वा इस न्याय से, षष्ठि द्वित्व, प्रकरणस्थ, जो लिटि धातोरनभ्यासस्य द्वित्व है उसीका निषेध करता है।

सर्वत्र शा०। शाकल्य के मत में सर्वत्र अच् से परे यर् को द्वित्व हो। दीर्घाद०। आचार्यों के मत में सर्वत्र द्वित्व नहीं होता है। "अनचिच" सर्वत्र शाकल्यस्य इन्हों से कार्य सिद्ध हो जायगा फिर त्रि प्रभृति०-दीर्घादाचा० यह दोनों सूत्र मत भेद प्रदर्शनीय हैं॥

अचोरहाभ्या०। अच् से परे जो रेफ हकार तिन्होंसे परे यर् को द्वित्व हो विकल्प करके। हरि + अनुभवः अत्र यणि

कृते हर्यनुभव । पुनस्तेन द्वित्वे हर्य्यनुभव । पुन हलो यमा० हल् से परे यम् का लोप हो हल् परे रहते विकल्प करके । इस करके द्वित्व यकार वालों में य को लोप हो गया इस वास्ते कहते हैं इति लोप पक्षे द्वित्वाऽभावपक्षे, चैकेय रूप सुद्युम्नम् । इससे लोप होगया उस पक्ष मे और द्वित्वाऽभाव पक्ष मे एकसा रूप हो गया फिर हलो यमा० सूत्र क्यों किया इस वास्ते कहते हैं । "लोपारम्भ इति" लोप का फल तो आदित्य शब्द मे "दित्या-दियाo" इस सूत्र मे ण्य प्रत्यय होने पर आदित्यय यहा अकार लोप करने पर "हलो यमा यमि०" से य लोप हो गया । लोप का फल माहात्म्य मे भी तो है फिर वहा लोप क्यों दिया इस वास्ते कहते यमा यमीति० । यमा यमि यहा यथा सख्य होने मे लोप नहीं होता है । अर्थात य का य परे रहते लोप होता है । म का म परे रहते इस वास्ते यहा फल नहीं । श०—यथा सख्य करने वाला सूत्र यहा लिखना चाहिये । उ०—भाष्यकार ने शत्रु मित्र कलत्र च जय रञ्जय भञ्जय इस लौकिक न्याय से खण्डन कर दिया है इस वास्ते नहीं लिखा है ।

"एचोयवा" एच् को क्रम से अय् अव् आय् आव् यह आदेश हों अच् परे रहते, यहा भी शत्रु मित्र कलत्र च० इस न्याय से यथा सख्य कर लेना । अथवा सम्भून । यणोर्येकारौ कारौ रयवौ चादेशौ ऐकारौ कारयो यया वादेशौ—अतो नास्ति यथा सख्य सूत्र स्यात्र प्रयोजनम् ।

तस्य लोप । उस इत्सज्ञक का लोप हो । हरेव इत्यादिकों मे यकारादिकों की इत्सज्ञा होकर लोप होना चाहिये । इस वास्ते कहते हैं इति "यवयोर्लो०" इस करके य् व् का लोप नहीं होता है

उदाहरण० "कारण सामर्थ्य से। श्रौर इत्संज्ञा का फल है लोप इस वास्ते इत्संज्ञा भी नहीं होती है। वान्तोयि०। इस सूत्र में यि विशेषण है श्रौर प्रत्यये यह विशेष्य है तो "येन विधिस्तदं०" से तदन्त विधि प्राप्त रही इस वास्ते इसका बाधा करने वाली परिभाषा है "यस्मिन् विधिस्तदादावल् ग्रहणे"। जहां अल् ग्रहण सप्तम्यन्त विशेषण भूत हो वहां तदादि की उपस्थिति करना यहां "यि" यह अल् ग्रहण है इस वास्ते तदादि उपस्थित हुवा तो क्या अर्थ हुवा "यकारादि" यकारादि प्रत्यय परे रहते श्रोकार श्रौकार को क्रम से अव् आव् आदेश हों। "इकोयण्" "एचो यवा०" "वान्तोयि०" इनकी जगह इचोऽचि यण् यवावाव वान्तोयि प्रत्यये ऐसान्यास सुवचं है। "गोर्यूतावितिं" गो शब्द के श्रोकार को वान्त आदेश हो यूति शब्द परे रहते छन्द में। अध्व परि गो शब्द के श्रोकार को अवादेश हो मार्ग में जहां मार्ग का परिमाण गम्य मान हो।

"गव्यूति" में वान्तोयि प्रत्यये इससे वान्त हो जायगा फिर वार्तिक क्यों किये। इस वास्ते कहते हैं ऊति यूति इत्यादिना० ऊति यूति इस सूत्र करके यूति शब्द निपातन से बना है प्रत्यय नहीं है।

वि०–गव्यम् नाव्यम् गव्यूति में प्रत्यय लक्षण से गव् को पद मानकर लोप शाकल्यस्य अथवा हलि सर्वेषाम् इनसे लोप होना चाहिये। इस वास्ते कहते हैं। "वान्त इत्यत्रे०" वान्तोयि प्रत्यये इस सूत्र में वकार के पूर्व वकार का प्रश्लेष करना श्रौर वह वकार लोपो व्योर्वलि से लोप कर देना तो क्या सूत्र का अर्थ हुआ यकारादि प्रत्यय परे रहते ववान्त आदेश हो अर्थात

न्त यान्त ही रहे लोप नहीं हो इस वास्ते कहते हैं "तेन श्रूयमाण०" इसमें श्रूयमाण ही वकार आदेश हो, वकार का लोप न
। इसने गव्यम् नाव्यम् में लोप नहीं होगा और उसी व वान्त
ो अनुवृत्ति "गो यूतौ" में करके उसका भी यह अर्थ करना
ूति शब्दे परे गोरोकारस्य यान्त वान्तएव, आदेशो भवति 'वकारो
लुप्यते इति' तेन गव्यूति रित्यत्रापि न वकारस्य लोप इति ।
व्यम् नाव्यम् में यत्प्रत्यय परे होने पर यचिभ से भ सञ्ज्ञा हो
ायगी, पदत्वाभाव होने से लोप नहीं होगा फिर वान्तोयि में
रलेप क्यों किया ? कहो कि गव्यूति के वास्ते हैं कि वकार लोप
हो सो भी ठीक नहीं क्योंकि "वान्तोयि" में वकार का प्रश्लेप
रना फिर ववान्त ऐसा अर्थ करना फिर उस यान्त की गोर्यूतौ
अनुवृत्ति करके उसका भी वही अर्थ करना कि यूति शब्द परे
हते गो शब्द को ववान्त आदेश हो इसमें गौरव होगा क्योंकि
ोनों स्थानों पर अर्थ करना और गो यूतौ में अनुवृत्ति करना
ससे गोर्यूतौ में छकार से पूर्व ही प्रश्लेप करना उचित है, यही
न्थकार का तात्पर्य है।

वि०—गामिच्छति गव्यूति यहा पर वकार लोप न हो इस
ास्ते वान्तोयि प्रत्यये में प्रश्लेप करना उचित है।

गु०—यहा भी लोप नहीं हो सक्ता क्योंकि यहां 'नक्ये' नियम
र देगा, कि क्यच्–क्यङ् परे रहते नान्त ही पद सञ्ज्ञक होता है
न्य नहीं, गव्यूति में नान्त नहीं है इस वास्ते पद सञ्ज्ञा न होगी
ो लोप भी नहीं होगा। कोई यह कहता है कि वान्तोयि में
ाष्यकार ने वान्त का प्रत्याख्यान किया है और "एचोयवायाव"
ी अनुवृत्ति करके यकारादि प्रत्यय परे रहते एच् को अय् अव्

आय् आव् आदेश हों इस वास्ते वान्त ग्रहण नहीं करना। क्यों
कि योग्यार्थ चेयम् जेयम् में भी वान्त आदेश हो जायगा, तो य
भी नहीं कह सकते, क्योंकि "क्षय्य जय्यौ शक्यार्थे" इसका योग
विभाग करके 'क्षय्य जय्यौ एक योग, और 'शक्यार्थे द्वितीय
योग, तो सब जगह "वान्तो यि॰" से काम चल जायगा फिर क्य
सूत्र क्यों किया और योग विभाग क्यों किया। इस वास्ते नि
मार्थ होंगे कि 'एचश्चेद् वान्त आदेशास्तर्हि क्षिज्यो रेव शक्या
एव इस वास्ते जेयम् चेयम् में लोप नहीं होगा, कहो कि क्षय्यजय्य
एकारांश विषय में नियम करेगा ऐकारांश में नहीं तो रायमिच्छति
रैयति यहा भी "यि प्रत्यये" से यान्तादेश हो जायगा सो भी
ठीक नहीं क्योंकि रैयति यह छान्दस प्रयोग है इस वास्ते छन्दसि
दृष्टानुविधि वेद में जैसा देखा जाता है वैसा ही रहता है, इस
वास्ते रैयति में यान्तादेश नहीं होगा, फिर वान्त ग्रहण नहीं
करना, तो वान्त में प्रश्लेष करना भी अनुचित है, इस वास्ते प्रका
राद्या भूत में कहा है—यह बात ग्रन्थकार भी जानते थे, कि वान्त
का भाष्यकार ने खण्डन किया है इस वास्ते वान्त ग्रहण का खण्डन
छकार के पूर्व प्रश्लेप करने में ग्रन्थकार का तात्पर्य नहीं है।

वि०—कोई यह भी कहता है कि लोपोव्योर्वलि में वकार
भाष्यकार ने खण्डन किया है-वो ववान्त में व का लोप कैसे होगा।

गु०—यह खण्डन लौकिकोदाहरणाभाव प्रयुक्त है शास्त्री
प्रयोग में तो करना ही पड़ता है। गव्यूति छन्दस प्रयोग
छन्दसि दृष्टानु विधिर्भवति इस नियम से लोप नहीं होगा और
लौकिक गव्यूति में संज्ञा भावमयात् व लोपो नास्ति, इस न्याय से
नहीं होगा पुन छकार से पूर्व प्रश्लेप करना भी व्यर्थ ही है॥

नोट—कोई ववान्त प्रश्लेष में यह शंका करता है कि यहां कार लोप नहीं होना चाहिये क्योंकि "कार्य्यमनुभवन्हि कार्यी निमित्तत्वेनाश्रियते" कार्य का व लोप का अनुभव कराने वाला वान्त कार्यी है वह केवल निमित्त नहीं माना जा सकता इस वास्ते लोप नहीं होना चाहिये। उत्तर—यह परिभाषा यहां नहीं लगती है क्योंकि कार्य व लोप है और निमित्त वान्त का व है, इस वास्ते कार्य्य और कार्य्यी में भेद है जहां निमित्त और नैमित्तिक एक हो वहां यह परिभाषा प्रवर्त्त होती है। जैसे—सत्प्रत्यय कोतिमि ल मानकर सन् को ही द्वित्व करें तो निमित्त और नैमित्तिक एक होजाय तब द्वित्व नहीं होता है और सन् को मान कर धातु के वर्ण को द्वित्व करें तो यह परिभाषा नहीं लगती है इसी प्रकार ववान्त यहां पर भी नहीं लग सकती है क्योंकि जिस वकार का लोप करते हैं उस वकार में और जिस को निमित्त मानते हैं उस वकार में भेद है कार्य्य और कार्य्यी एक नहीं इस वास्ते लोपोव्योर्वलि से वकार का लोप हो ही जायगा।

धातोस्तन्निमित्तस्यैवेति— यादि प्रत्यय परे रहते यादि प्रत्ययनिमित्तक धातु के एच को वान्तादेश हो। लू धातोर्यत्प्रत्यये, गुणे च लव्यमिति रूपम्—एवमवश्य पूर्वकाद् लू धातो र्ण्यत्प्रत्यये वृद्धौ च अवश्य लाव्यम् (लुनेरवश्यम् कृते इति मकारस्य लोपे अवश्यं लाव्यम्—उभयत्र अनेन वान्तादेशो सिद्ध रूपम्। शंका—यहां तो वान्तोयि प्रत्यये से वान्तादेश हो जायगा। फिर धातोस्तन्निमित्तस्यैव, यह सूत्र क्यों किया इस वास्ते कहते हैं—तन्निमित्तस्यैवेतिकिम्? अवयव द्वारा समुदायस्य प्रश्न— अवयव द्वारा समुदाय में प्रश्न है—अर्थात् सूत्र क्यों किया तो व्यर्थ हुआ—व्यर्थ होकर

पृथक् लोप करके फिर कानि के साथ जोडा है। जिस समय कानि के साथ सन्ति को जोड़ते हैं उस समय सन्ति के आकार का लोप नहीं हुआ है तो "अच परस्मिन् नहीं लग सकता क्योंकि पद कौन कि उसे मानकर अजादेश क्या श्नसोरल्लोप करके अकार का लोप उससे पूर्वत्वेन दृष्ट विधि किसको है ? कानि के इकार को, सो तो इकार अलोप अवस्था में है ही नहीं फिर पूर्वत्वेन दृष्ट विधि नहीं है इस वास्ते यण् भी नहीं होगा फिर यह शका और समाधान निष्फल है। इसलिये पद सस्कार में यह नहो है—वाक्य सस्कार पक्ष में है। क्योंकि वाक्य सस्कार में किम् जस् अस् कि ऐसी अवस्था में किम की देशे जस शी, नुमि, दीर्घे च, कानि इति रूपम्। असकि श्नसोरल्लोप इति अकारस्य लोपे "झोन्त" इति झस्य अन्ता देशे सन्ति इति रूपम्। इदानींश्च कानि सन्ति इति प्रयोगे अचः परस्मिन्निति अकार लोपस्य स्थानिवत्वेन यणि प्राप्ते। क्योंकि पर कौन कि उसको मान अजादेश क्या, अलोप उससे पूर्वत्वेन दृष्ट विधि क्या है कानि के इकार को यण् इस वास्ते अलोप स्थानिवत् हो जायगा, तो यण् होना चाहिये, इसी प्रकार किम् औ अस्तस् यहा पर भी किम कादेशे असोऽकारस्य लोपे सकारस्य विसर्गे च स्त इति रूपम् क-औ वृद्धौ-कौ इति रूपम्। सहैव साध्यते तदा अत्रापि अलोपस्य स्थानिवत्वेन एचोऽयवायाव इति औकारस्य आवादेशे प्राप्ते-इत्याशयेनाह "कानि सन्ति कौस्त" कानि सन्ति कौस्त यहा पर, अलोप को स्थानिवत् होने से यण् आवादेश प्राप्त रहे इस वास्ते कहते हैं। "नपदान्तेति०" इस सूत्र करके स्थानि वद्भाव का निषेध होगया क्योंकि यहा पदों का अन्तावयव विधि कर्त्तव्य है। श० अच्छा

हम वाक्य सस्कार पक्ष में भी प्रथम 'कानि, को' सिद्ध नहीं करेंगे 'सन्ति, को साधेंगे। तब भी तो अलोप अवस्था में कानि,का इकार न होने से पूर्वत्वेन दृष्टविधि नहीं होगी तो यण् पावेगा ही नहीं उ० प्रथमोपस्थितिकत्वेन अन्तरङ्गत्वात् पूर्व कानि इत्यस्य सिद्धि• पश्चात् सन्ति एक पूर्व परयो , । पूर्वश्च परश्च तयो• पूर्व परयो स्थाने एकादेशो भवति इत्यर्थ ।इत्यधिकृत्य। इसका अधिकार करके स्वस्मिन् फल शून्यत्वे सति उत्तरोत्तरैकवाक्यतया फलनिष्पादकत्व मधिकारत्वम्। पूर्व परयो. इस षष्ठ्यन्त पद को देख कर आदे• परस्य, और 'अलोऽन्त्यस्य' इन दोनों सूत्रों की उपस्थिति होगी इस वास्ते पूर्व के अन्तावयव को और पर के आद्यावयव को कार्य करना सब स्थानों पर।

आद्गुण –अवर्ण से अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान मे एक गुणादेश हो। 'आत्, यह पञ्चम्यन्त है इस वास्ते विभक्ति के तकार में "तपरस्तत्का०" यह सूत्र नहीं लगता है। क्योंकि यदि विभक्ति के तकार में भी "तपरस्तत्का०" लग जावे तो "उपसर्गादृति" इस सूत्र में उपसर्गात् इस विभक्ति के तकार से ही ऋति का ऋ ह्रस्व लिया जाता फिर ऋति में तपर करण क्यों किया वही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'विभक्तिस्थतकारे तपरस्तत्कालस्य इति सूत्र न प्रवर्तते, इसी वास्ते उपेन्द्र, रमेश, यह ह्रस्व और दीर्घ के उदाहरण दिये हैं॥

'उरण्रपर.'। उ यह ऋ शब्द का षष्ठ्येकवचन है। और ऋ ऌ की सवर्ण सज्ञा है इस वास्ते कहते हैं—ऋ इति त्रिं०। ऋ यह तीस प्रकार की सज्ञा वाला है यह कह चुके हैं। तत्स्थाने इति। उस ऋ ऌ के स्थान में होने वाला जो अण् वह रपर और

करते तो यह अर्थ होगा कि अवर्ण से इण् एध् और ऊठ् परे रहते वृद्धि एकादेश हो—तब तो उप+इत इस तस् के रूप मे और मा भवान् प्र+इदिधत् इस णयन्त एधू के रूप मे भी वृद्धि हो जाती इस लिये अचि की अनुवृत्ति की है। शङ्का। इदिधत में तो प्राप्ति नहीं क्योंकि एध् नहीं है। उत्तर० प्रकृतिग्रहणे ण्यन्तस्यापि ग्रहणम्। प्रकृति के ग्रहण मे ण्यन्त का भी ग्रहण होता है इस वास्ते इदिधत् का भी ग्रहण हो गया। शं०। अथ—आ+इहि यहां "आद्गुणः" से गुण किया—अव+एहि इस अवस्था में "अन्तादिवच्च" कर के पूर्वान्तवद्भावेन आङ् मान कर "ओमाङोश्च" कर के पर रूप प्राप्त रहा और एत्येधत्यू० से वृद्धि और "एङि पररूप" से पर रूप तो इन तीनों में से कौन हो तब 'विप्रतिषेधे पर कार्यम्' करके परत्वात् 'ओमाङोश्च' और 'एङि पर रूपम्' यह दोनों प्राप्त रहते इस वास्ते एत्येधत्यू० यह निरवकाश हो जायगा क्यो कि इस के विषय में कहीं तो, एङि पर० प्राप्त कहीं ओमाङोश्च—कहीं आद्गुणः—तो यह व्यर्थ हो कर बाधक होगा और बाधक पक्ष मे दो पक्ष होते हैं एक बाध्य सामान्य चिन्ता पक्ष, और एक बाध्य विशेष चिन्ता पक्ष, तो बाध्य विशेष पक्ष मूलक जो परिभाषा है "पुरस्तादपवा०" पूर्व पठित अपवाद अनन्तर जो विधि है उस का बाधक होता है, उत्तर का नहीं, इस वास्ते एत्येधत्यूठ्० निरवकाशत्वात्, एङि पर रूपम् इस का बाधक होगा और यह बात युक्तियुक्त भी है क्यों कि जब, एङि पर रूप को बाध कर उपेति उपैधते में वृद्धि कर के चरितार्थ हो गया तो ओमाङोश्च के बाधने में कोई प्रमाण नहीं है इस वास्ते आवेहि परत्वात् ओमाङोश्च पर रूप कर देगा—इस वास्ते कहते हैं "पुरस्तादपवाद०"। पुरस्तादपवाद न्याय से यह एत्येधत्यू० सूत्र विधि

वृद्धि "एकिररूप" इस की बाधिका होगी ओमाङोश्च की नहीं "तेनावेहि०" इस वास्ते अवैहि यह जो कालिदासादिकों ने वृद्धि किया है यह असाधु है अर्थात् अयोग्य है। इसी वास्ते 'अवेहि तन्मएडन मिश्र धाम" यह प्रयोग संगत हुआ। वास्तविक में 'अवैहि,' में अव उपसर्ग नहीं है किन्तु उपसर्ग प्रकृति रूप अव्यय है इस वास्ते वृद्धि करना ही युक्ति युक्त है। दीक्षित कथन सर्वथा अनुचित है इति गुरु चरणा। 'अक्षादू०,' अक्ष शब्द के अन्त्य अवर्ण से ऊहिनी शब्द का अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश हो। अक्षौहिणी। 'पूर्वपदात्संज्ञाया-मगः' इति णत्वम् 'स्वादिरेरिणो,' स्व शब्द के अन्त्य अवर्ण से, इर् और इरिण् शब्दों का अवयव अच् परे रहते पूर्व परके स्थान में वृद्धिरूप एकादेश हो। स्वैरिणी। शका यहां इरिण् शब्द परे नहीं है। उत्तर 'प्रातिपदिक ग्रहणे लिङ्ग विशिष्टस्यापि ग्रहणम्' प्रातिप-दिक के ग्रहण में लिङ्ग बोधक जो प्रत्यय तद्विशिष्ट का भी ग्रहण होता है इससे 'इरिणी, परे रहते भी वृद्धि हो गई। 'प्रादूहो०,' प्र शब्द के अन्त्य अवर्ण से ऊह ऊढ ऊढि एष एष्य-शब्दों का अवयव अच् परे रहते पूर्वपर को वृद्धि हो। शि० गुरुजी जैसे-प्र + ऊढ प्रौढ यहां 'प्रादूहो०, से वृद्धि हो गई इसी प्रकार प्र + ऊढवान् यह क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द परे रहते भी वृद्धि होनी चाहिये। गु० चेटे प्रौढ के समान प्रोढवान् में वृद्धि नहीं होती है किन्तु आद्गुण से गुण होता है क्योंकि 'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थ-कस्य ग्रहणम्, अर्थवान और अनर्थक का जहां ग्रहण पावे वहां अर्थवान् का ही ग्रहण होता है अनर्थक का नहीं। प्रौढ में जो ऊढ शब्द है उसका ऊढाकर्मकवहनम् यह अर्थ है और ऊढवान् का वहन कर्तृ भूत यह अर्थ है। इस वास्ते वार्तिक में ऊढ शब्द

का प्रेष्य रूप बनता है 'ऋते च०, अवर्ण से, तृतीया समासके घटकीभूत अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश हो।'ऋतेच समासे० ऐसा ही सूत्र करना था तृतीया ग्रहण क्यों किया इस वास्ते कहते हैं तृतीयेति किम्। परमश्चासौ ऋत इति परमर्त। यहां कर्मधारय समास है, अतः वृद्धि नहीं हुई आद्गुण करके गुण हो गया।

'प्रवत्स०, आदि शब्दों के अन्त्य अवर्ण से परे ऋण शब्द का अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश हो। 'ऋणस्येति, कर्ज दूर करने के वास्ते जो अन्य से ऋण लिया जावे उसे ऋणार्णम् कहते हैं। दश ऋणानि यस्मिन् असौ दशार्णो देश दश दुर्ग वाला देश अथवा दश ऋणानि जलानि यस्याम् सा दशार्णा नदी। इस में क्या प्रमाण कि ऋ शब्द के दो अर्थ हैं इस वास्ते कहते हैं 'ऋण शब्दस्येति, ऋण शब्द दुर्गभूमि में और जल में रहता है। 'उपसर्गा०, अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु का अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश हो 'गुणापवाद०। प्र इति अव्यय पदम् ऋच्छति इति 'क्रिया पदम्। उपसर्गादृति इति–पदात्वेप्रघृतिरकारस्यऋच्छति ऋकारस्य च वृद्धौ प्रार्च्छति, उपार्च्छति। उभयत्र अन्तादिवत्। अन्तादिवच्च अन्तश्च आदिश्च अन्तादी ताभ्यां तुल्यम् अन्तादिवत् यह जो एकादेश है पूर्व स्थानी घटित समुदाय वृत्ति जो धर्म है तद् विशिष्ट हो और यह जो एकादेश है पर स्थानी घटित समुदाय वृत्ति जो धर्म है, तद्विशिष्ट हो। एकादेश कौन आर वृद्धि इस का पूर्व स्थानी कौन प्रवृत्ति अकार वद्घटित धर्म कौन पदत्व वह पदत्व धर्म वाला आर हो तो आर को पद के अन्त का मान कर

'खर्वसानयो , खर परे रहते और अवसान में पदान्त रेफ का विसर्ग हो इति विसर्ग प्राप्ते। इस करके विसर्ग प्राप्त रहे। इस वास्ते कहते हैं 'अन्तवद्भावेनेति०, अन्तादिवच्च करके अन्तवद्भाव मानकर पदान्त रेफ का विसर्ग नहीं होता है उभयथर्त्तु कर्तरि-चर्षि देवतयोः, इत्यादि निर्देश से। अर्थात् उभयथा + ऋच, च + ऋषि यहा उभयथा इतना पद है और च यह पद है दोनों जगह आद्गुण लगाने पर थर्त्तु, चर्षि यह पद बन गये। परन्तु यहा पर भी अन्तादिवच्च से पद मान कर आचार्य ने विसर्ग नहीं किया। इसी से जानते हैं। अन्तवद्भाव से पदान्त रेफ का विसर्ग नहीं होता है॥

वि० गुरु जी रेफ का विसर्ग हो जाय तो 'उरण् रपर , से रपर ही व्यर्थ हो जाय। गु० उरण् रपर से किया हुआ रपर व्यर्थ नहीं है क्योंकि कृष्णर्द्धि मे चरितार्थ है। वि० अच्छा उभयथर्त्तु,कर्तरि चर्षि देवतयो यह दोनों निर्देश, आपके ठीक नहीं है क्यो आद्गुण ,जो सूत्र है सो पदद्वय सम्बन्धी वर्णद्वय की अपेक्षा करता है इस वास्ते वहिरंग हो गया तो 'असिद्ध वहिरग०, इस से 'खरव सानयो ०, की दृष्टि में असिद्ध हो जायगा तो विसर्ग की प्राप्ति ही नहीं। इस वास्ते निर्देश ठीक नहीं। गु० 'खरव सानयो०, यह रेफ और षकार वर्णद्वयापेक्ष होने से वहिरग परिभाषा नहीं लगती तो निर्देश ठीक ही है। वास्तविक में तो यहा वहिरग परिभाषा लगती ही नहीं क्योंकि 'वाह ऊठ्, इस सपाद सप्ताध्यायी-स्थ सूत्र से ज्ञापित है तो सपाद सप्ताध्यायी में ही लगेगी। त्रिपादी में नहीं 'खरवसानयो , यह त्रिपादी है इसमें नहीं लगेगी। अत निर्देश ठीक है। और दूसरी बात है कि भगवान् पतञ्जलि ने

नाकुटीनाकल्पि' इत्यादिकों में ~न्तवद्भाव से विसर्ग का निषेध किया है (रेफस्य पूर्वान्तवत्वेन विसर्जनीय प्रतिषेधो वक्तव्य') रेफ को पूर्वान्त वद्भाव मानकर विसर्ग का प्रतिषेध कहना। इस वार्तिक से निषेध किया है। यदि बहिरङ्ग परिभाषा से निषेध होता तो पतञ्जलि वार्तिक क्यों करते। इससे भी जानते हैं कि बहिरङ्ग परिभाषा नहीं प्रवृत्त होती है। अत' निर्देश से 'विसर्ग का वारण करना।

वि० अच्छा विसर्ग नहीं हुआ परन्तु प्र + ऋच्छति यहा ऋत्यक से पक्ष मे प्रकृति भाव क्यों नहीं होता है। गु० 'येन विना यदनुप पन्नं तत्तेनाक्षिप्यते, जो जिसके विना नहीं रह सका है उस का उसमे आक्षेप हो जाता है' जैसे घटमानय यहा जाति को मूर्त्त होने से आनयन असभव है इस वास्ते जाति से व्यक्ति का आक्षेप हो जाता हैं। इसी प्रकार 'उपसर्गादृति, मे भी उपसर्ग से धातु का आक्षेप हो जायगा क्योंकि उपसर्ग सज्ञा क्रिया के विना नहीं होती है। अत उपसर्ग से क्रिया का आक्षेप हो जायगा फिर धातु ग्रहण क्यों किया इस वास्ते कहते हैं 'उपसर्गेणैव, उपसर्ग से ही धातु का आक्षेप सिद्ध है फिर धातु ग्रहण क्यों किया तो योग विभाग करना; 'उपसर्गादृति,' यह प्रथम सूत्र हुआ, अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु का अवयव अच् परे रहते वृद्धि हो। और दूसरा हुआ "धातौ" इसमें पूर्व सूत्र से उपसर्ग और ऋति की अनुवृत्ति करना। अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु का अवयव अच् परे रहते वृद्धि हो। यह अर्थ करना। अब कहते हैं जो पूर्व सूत्र ने कार्य किया वही "धातौ" ने किया फिर योग विभाग व्यर्थ हो कर नियम करता है कि वृद्धि ही हो अन्य कार्य

नहीं हों, तेन ऋत्यक इति पाक्षिक पि प्रकृति भावोऽन्नभवति,
इससे ऋत्यक करके पक्ष में प्रकृति भाव नहीं होता है।

वि० गुरु जी धातु ग्रहण व्यर्थ नहीं है क्योंकि जब सूत्र में धातु ग्रहण है तब हम उपसर्ग कैसा लेते हैं कि उपसर्ग संज्ञा जिसको मान कर हो वही धातु परे रहते वृद्धि होती है। अन्य धातु के योग में उपसर्ग संज्ञा हो वहा नहीं हो जैसे प्र-गत ऋद्ध' प्रर्द्ध' यहा गत को मान कर उपसर्ग संज्ञा है और ऋद्ध के साथ जोडने से प्र उपसर्ग नहीं माना जाता है इस वास्ते यहां गुण होकर प्रर्द्ध' रूप बनता है अब धातु ग्रहण नहीं करेंगे तो यहा भी वृद्धि हो जायगी इस वास्ते धातु ग्रहण व्यर्थ नहीं है।

गु० यहा प्र की गमन क्रिया को मान कर उपसर्ग संज्ञा है ऋद्ध जो ऋकारादि धातु है उसको मान कर नहीं है अत 'उपसर्गा क्रिया' में 'यत्क्रिया युक्ता प्रादयस्तंप्रत्येव गत्युपसर्ग संज्ञेति। इस वास्ते धातु ग्रहण उक्तार्थ में ही ज्ञापक है। वि० गुरु० जी "उपसर्गादृति" इस सूत्र में उपसर्ग पद के स्थान पर 'गतेर्ऋति धातौ' ऐसा सूत्र कर देंगे क्योंकि इसमें लाघव है। गुरु० अच्छर्च्छति यहा भी वृद्धि हो जायगी क्योंकि 'अच्छ गत्यर्थ वदेषु' इससे अच्छ की गति संज्ञा है। अत उपसर्ग ग्रहण किया है।

'वा सुप्या०' अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि सुप् धातु का अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश हो विकल्प करके। सूत्रमें वा ग्रहण से ही विकल्प सिद्ध होजायगा फिर आपिशलि ग्रहण क्यों किया इस वास्ते कहते हैं - "आपिशलि ग्रहण मिति" आपिशलि ग्रहण पूजार्थ है 'धन्योऽय मन्यो यस्मिन्

आपिशलेरपि सम्मति । प्रकर्षेण ऋषभमिच्छति प्रार्षभीयति इसमें ऋति की अनुवृत्ति है और ऋ ऌ वर्ण की सवर्ण संज्ञा है इस वास्ते ऋ से ऌ भी लिया जायगा इस वास्ते कहते हैं 'सावर्ण्यात् ऌवर्ण०, । ऋति में तपर होने से 'तपरस्तत्काल०, लगने से दीर्घ का ग्रहण नहीं होता है इस वास्ते कहते हैं 'तपरत्वादिति, । उप + ऋकारीयति यहां स्थिति दिखाई है विकल्प का रूप नहीं है। 'एङि पर०, अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु का अवयव अच् परे रहते पर रूप एकादेश हो। इह 'वा सुपीति०, यहां वृत्ति कार ने 'आपिशलेः' से वासुपि की अनुवृत्ति करके वाक्य भेद से व्याख्या की है अर्थात् द्वितीय वाक्य बनाना। अवर्णान्त उपसर्ग से एङ दि सुप् धातु परे रहते विकल्प करके पररूप हो। इस वास्ते उप + एड कीयति इत्यादिकों में विकल्प से पररूप करना।

'एवेचेति,० । अवर्ण से अनियोग अनिश्चित अर्थ में वर्त्तमान एव शब्द परे रहते पूर्व परके स्थान में पर रूप एकादेश हो। नियोगोऽवधारणम्। नियोग निश्चय को कहते हैं यहां 'अनवक्लृप्तावेव शब्द' यहां अनिश्चय का वाचक एव शब्द है 'एवेच, इतना वार्त्तिक करने से कार्य चल जायगा फिर अनियोग ग्रहण क्यों किया इस वास्ते कहते हैं 'अनियोगे किम्, अनियोग क्यों कहा तवैव तेरे ही घर पर भोजन करूगा यहां निश्चय अर्थ है इस वास्ते वृद्धि हो गई अन्यथा पररूप होकर तवेव बन जाता इस वास्ते किया।

"अचोऽन्त्या"० अचों के मध्य में अन्त्य अच् वह है आदि अवयव जिसका ऐसा समुदाय टि संज्ञक हो यहां अचः यह निर्धारण में षष्ठी है।

"शकन्ध्वादि"० शकन्ध्वादिकों की सिद्धि के लिये पर रूप कहना कस्येत्याह-तन्न्चटे. । यह पर रूप टि को होता है

शक + अन्धु यहां दो पद हैं शक पृथक् अन्धु पृथक् । शं० शक में जो "क" में "अ" है वह किसी का आद्यावयव नहीं इसवास्ते टि संज्ञा नहीं होनी चाहिये । उत्तर । आद्यन्तवदे कस्मिन् से आद्यावयव मान कर टि संज्ञा करता । "आकृति" आकृत्या रूपेण गण्यते ज्ञापयते यस्मिन् असौ आकृति गण । मृतादण्डा उज्जाव इति मार्तण्ड. सूय ।

"ओत्वोष्ठयो." अवर्ण से ओत्व ओष्ठ शब्दों का अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में पर रूप एकादेश हो विकल्प करके समास में । वृद्धि का बाधक है । स्थूलश्चासौ ओतु इति बिम्ब मिव ओष्ठौ यस्येति । समासे किम् । समास क्यों किया तवैव । यहां समास नहीं है पर रूप हो जाता इस वास्ते समासे करता । "ओमाङोश्च" अवर्ण से ओम और आङ् परे रहते पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश हो । शिव + आङ् + इहि-इति पद त्रयम् यहां वकार वृत्ति अकार को और आङ् के आकार को 'अक सवर्णे दीर्घ, करके दीर्घ प्राप्त रहा । और आको और इहि की इको आद्गुण से गुण प्राप्त रहा । तो कौन होना चाहिये यह शंका हुई । उत्तर 'धातूपसर्ग कार्यमन्तरङ्गम्, धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरंग होता है तो असिद्ध बहिरंग मन्तरंगे करके आद्गुण की दृष्टि में 'अक' सवर्णे, असिद्ध होगया इस वास्ते प्रथम आद्गुण से गुण होगया तो शिव + एहि अव अन्तादिवश्च करके पूर्वान्त वद्भाव से 'ए में अगत्व धर्म मान कर पररूप कर देना तो शिवेहि बन गया।। "अव्यक्तानुक, । अव्यक्त

शब्द का अर्थ ध्वनि है। ध्वनि का अनुकरण जो शब्द तद् अवयव जो अत् उसको पर रूप एकादेश हो इति शब्द परे रहते। 'एकाचोन,। ध्वनि का अनुकरण जो एकाच् शब्द तद् अवयव जो अत् उसको पर रूप न हो।

'नाम्रेडि०, आम्रेडित सञ्ज्ञक जो पर रूप न हो अन्त्य तकार मात्र को विकल्प करके हो। पूर्वस्यापवाद'। 'डाचि बहुलमिति, डाच् परे रहते बहुलता से द्वित्व हो। यहा डाच् नहीं है तो कैसे द्वित्व हो गया इस वास्ते कहते हैं बहुल वचनात्, बहुल ग्रहण से द्वित्व होगया। 'तस्येति,। अत्र पर शब्दोऽवयव वाची। द्विरुक्त का जो पराऽवयव वह आम्रेडित सञ्ज्ञक हो। 'झलाज,' पदान्त में झलों को जश हो। 'अकःसवर्णे०, अक् से सवर्ण अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में दीर्घ रूप एकादेश हो।

शंका। 'नाज्झलौ, यह सूत्र अच् हल् की सवर्ण सञ्ज्ञा का निषेध करता है इस वास्ते अक् से सवर्ण परे अच् ही मिलेगा हल् परे रहते दीर्घ हो ही नहीं सकता है फिर अचि किम् अच् ग्रहण क्यों किया। उ० कुमारी शेते यहा पर पूर्व वर्णानामु० इस भाष्योक्ति से 'तुल्यास्य प्रयत्न सवर्णम्, 'नाज्झलौ, इन दोनों सूत्रों से प्रथम 'अणुदित् सवर्णस्य, इस ग्राहक शास्त्र का वाक्यार्थ बोध नहीं है इस वास्ते 'नाज्झलौ, के वाक्यार्थ बोधावसर में अच् पद से वर्ण समाम्नाय पठित ह्रस्व वर्ण ही इस सूत्र में लिया जायगा दीर्घादि नहीं तो दीर्घ ईकार और शकार के तालु स्थान और विवृत प्रयत्न होनेसे सवर्ण सञ्ज्ञा हो जायगी 'नाज्झलौ, निषेध नहीं करेगा तो कुमारी शेते में रकारवृत्ति ईकार और शकार को दीर्घ हो जायगा। अतः अचि करना चाहिये इस

वास्ते कहते हैं 'नाज्झलौ विति०, नाज्झलौ यह दीर्घ और शकार की सवर्ण संज्ञा का निषेध नहीं करता है ग्रहणक शास्त्र का (अर्थात् अणुदित् सूत्र का) सवर्ण संज्ञा विधायक से और निषेध जो नाज्झलौ है इससे प्रथम वाक्यार्थ बोधकी असिद्धि होने से अर्थात् वाक्यार्थ बोध न होने से।

वि० अच्छा जब सबका वाक्यार्थ बोध हो जायगा तब 'अणुदित्स, सूत्र 'नाज्झलौ मे लग जाय तब तो अपि व्यर्थ है।

गु० 'नापि स्वाग्रे नापि स्वस्मिन्,। 'अणुदित्स० सूत्र अपने में और अपने अङ्ग भूत नाज्झलौ में नहीं लगता है। 'अक सवर्णे० यह सूत्र अक् से सवर्ण अच् परे रहते दीर्घ करता है तो अक् से सवर्ण परे अक् ही मिलेगा अतः अकोऽकि दीर्घ' ऐसा ही सुवाच्य है। सवर्ण ग्रहण नहीं करना चाहिये इत्याशयेनाह। 'अकोऽकि०,। श० सवर्ण ग्रहण नहीं करेंगे तो "अ" को ईकोदीर्घ हो जायगा

छ० यथा सख्य से कार्य चल जायगा।

वि० ऋ ऌ की सवर्ण संज्ञा होने से यथा सख्य नहीं लगेगा।

गु० जाति पक्ष मान कर निर्वाह हो जायगा ऋत्व जात्यवच्छिन्न ऌ भी है ऋ ऌ की यथा सख्या मान कर दीर्घ हो जायगा अतः सुवच है। "ऋति सवर्णे०" ऋकार से सवर्ण ऋ परे रहते ऋ हो विकल्प करके। होतृ + ऋकार, होतृकार पक्षे दीर्घ, होतॄकार, इति रूपद्वयम्। एवम् " ऌति सवर्णे ऌ वा "

ऋ से सवर्ण ऌ परे रहते ऌ हो विकल्प करके। होतृ + ऌकारः होत्ऌकार पक्षे दीर्घ होतॄकार इति रूप द्वयम्। एवम् " ऌति सवर्णे ऌवा, ऋ से सवर्ण ऌ परे रहते ऌ हो विकल्प करके। होतृ + ऌकार, होत्ऌकार। 'पक्षे दीर्घ, सावर्ण्यात् ऋकार। सवर्ण होने से अर्थात् ऋ ऌ की सवर्ण संज्ञा होने से दीर्घ ऋ ही होगा ऌ नहीं होगा क्योंकि ऌ को दीर्घ का अभाव है। वि० गुरु जी यहां तो 'अक सवर्णे सूत्र ही से द्वि मात्रिक ऋ ऌ हो जायगे फिर यह वार्तिक क्यों किया। गु० वार्तिकों से दीर्घ की अपेक्षा विलक्षण ऋ ऌ बनते हैं इस वास्ते वार्तिक किये हैं उस विलक्षणता को ग्रन्थकार कहते हैं 'आद्यस्येति, आद्य जो होतृकार है उसके बीच में दो रेफ हैं और उनकी एक मात्रा है और चारो तरफ अच् भक्ति रहती है और 'द्वितीयस्यमध्ये, और द्वितीय जो ऌकार है उसके बीच में दो लकार हैं, और इन्हों की एक मात्रा है और चारो तरफ अच् मात्र रहता है यह विलक्षणता है अतएव वार्तिक किये हैं।

वि० गुरु जी वार्तिक करने यदि आवश्यक ही थे तो सक्ष शब्दों की अर्ध मात्रिक होने से " ऋति सवर्णे लोप " ऐसा ही वार्तिक कर देते ऋ ग्रहण क्यों किया। गु० कार्य तो हो जाता परन्तु जो वार्तिकों से ऋ ऌ आदेश होते हैं वे लोप करने से नहीं होंगे। इस वास्ते लोप नहीं करना। एक प्रकार से तो वार्तिक का खण्डन है जैसे 'तुल्यास्य' इस सूत्र में के भाष्य में तो "अक सवर्णे दीर्घ" इसीसे दोनों ऋकारों के स्थान में रेफद्वयवत्तारू गुण कृत आन्तर्य से, ऌकार में लकारत्व आन्तर्य से दो रका लकार वाले ऋ ऌ आदेश करके इन वार्तिकों का खण्डन किय

है। नि० वार्त्तिकद्वय से विहित अच्त्व कैसे होगा। गु० अइउण् सूत्र के अनन्तर पढ देंगे। वि० चारों तरफ अच् कैसे रहते हैं। गु० जैसे मातृणाम् में ऋकार का एक देश रेफ माना है इसी प्रकार "वर्णैकदेशो वर्णग्रहणेन गृह्यते,, इस भाष्य से मान लेना चाहिये।

'इकेति०' यहाँ दोनो जगह ऋत्यक से प्रकृति भाव कहेंगे।

"एङ पदा०" पदान्त एङ् से अत परे रहते पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो। "सर्वत्रेति०" लोक और वेद में पदान्त में वर्तमान एङन्त गो शब्द को प्रकृति भाव हो अत् परे रहते विकल्प करके। " एङन्तस्य किम् "। श०। सब जगह गो शब्द एङन्त ही मिलेगा फिर एङ् ग्रहण की अनुवृत्ति क्योंकी। उ० "चित्रा गावो यस्येतिचित्रगु तेषा अग्रम् चित्रगु अग्रम" यहां 'गो० स्त्रियोरुप०" करके गो,के ओकार को ह्रस्व 'उ, हो गया "सर्वे सर्व पदादेशा "इस भाष्य से गो,को'गु,हुआ तो 'स्थानिवदा-देश०, इस से गु में गोत्व धर्म मान कर प्रकृति भावहो जायगा इस वास्ते एङन्त कहा—श०। गु में गोत्व धर्म मान लेते हो। हम भी"स्थानिवद्भाव",से एङन्तत्व धर्म मान लेंगे। उ०। एङन्त धर्म अल्माश्रयृत्ति धर्म होने से नहीं आ सकता है और "एकदेश विकृतमनन्यवत्" इस न्याय से मान लोगे सो ठीक नहीं है क्यों कि "विकृतावयव निबन्धन कार्ये नाऽय न्याय " विकृत हो गया है निबन्ध जिसका ऐसा जो अवयव उस में यह न्याय नहीं लगता है। पदान्ते किं गो । यहा गो अस् गो अस् है। पदान्त सकार है गो नहीं है इस कारण से 'ङसिङसोश्च,से पूर्व रूप हो गया।

"अवङ् स्फोटा०" इस मे अचि की अनुवृत्ति है पदान्त मे वर्तमान जो एङन्त गो शब्द तिसको अवङ् आदेश हो अच् परे विकल्प करके। श० इस सूत्र मे धारा प्रवाह मे अति की अनुवृत्ति करें या मण्डूक प्लुति से अचि को। उ०। अतीति निवृत्त, अति यह निवृत्त हो गया। और मण्डूक प्लुति न्याय से अचि का सम्बन्ध हो गया। श०। धारा प्रवाह न्याय का त्याग करके मण्डूकप्लुतिम अचि का सम्बन्ध करने मे क्या प्रमाण है। उ० "प्लुतप्रगृह्याअचिनित्यम" इस सूत्र में नित्य ग्रहण ही मण्डूक प्लुति मे प्रमाण है क्योंकि भाष्यकार यह कहते है कि " प्लुत प्रगृह्या ,, मे नित्य ग्रहण इसे वास्ते है कि 'इन्द्रे च' मे वा की अनुवृत्ति नहीं आवे। न 'वा, की अनुवृत्ति तो 'इन्द्रेच, इस सूत्रारम्भ सामर्थ्य से ही नहीं आवेगी विकल्प करनी होती तो पूर्व सूत्र से ही 'अवङ्, हो जाता फिर 'इन्द्रे च, क्यों किया यही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'वा, की अनुवृत्ति नहीं आती फिर नित्य ग्रहण व्यर्थ है यह नित्य ग्रहण ही मण्डूक प्लुति मे प्रमाण है। यदि 'अति, की अनुवृत्ति होती तो भाष्यकार 'पूर्व सूत्रेणैव सिद्धे "इन्द्रे चेति" किमर्थम्, यह कैसे कहते इसी से जानते हैं कि 'अति, की निवृत्ति है और अचि का सम्बन्ध है। 'पदान्तेति किं, पदान्त क्यों कहा गो-ङि-गोइ यहां सप्तम्यैक वचन मे भी अवङ् होकर 'आद्गुण', से अनिष्ट हो जाता। इस वास्ते पदान्त कहा। अब 'एचो यवा०, से अव् होकर गवि बन गया। गो अग्रम् यहा जैसे प्रकृति भाव, अवङ्, पूर्व रूप, होकर तीन रूप बनते हैं इसी प्रकार से गो अग्र, यहा पर भी प्रकृति भाव, अवङ्, पूर्व रूप होकर तीन रूप होने चाहिये। नित्य अवङ् करके गवाक्ष कैसा? इसवास्ते कहते हैं व्यवस्थित विभाषया.

नि० "विगतोवस्था विकल्परूपा जाताऽस्यामिति व्यवस्थिता
ाचामो निभाषा चेति व्यवस्थित विभाषा,, यहां विकल्परूपाव-
ा होने से नित्य अवङ् हो गया अर्थात् कहीं नित्य कहीं विकल्प
हीं सूत्र नहीं लगता यही व्यवस्थित विभाषा है ॥ गवेन्द्र में भी
व्यवस्थित विभाषा मान कर नित्य अवङ् आदेश "अवङ् स्फो०"
ी कर देवेंगे फिर 'इन्द्रे च,सूत्र क्यों किया यही व्यर्थ होकर ज्ञापन
करता है "देवत्रातो गलो ग्राह इति योगे च सद्विधि । मिथस्तेन
विभाष्यन्ते गवाक्ष 'संशितव्रत ॥ बस इतनी जगह व्यवस्थित
विभाषा होती है अन्यत्र नहीं इस वास्ते इन्द्रे च सूत्र किया।
"प्रकृत्यान्त पादमव्यपरे" इस सूत्र की जगह "नान्त पाद म०
ऐसा पढेंगे क्यों कि इस में लाघव है उस और नान्त पढन की
प्रवृत्ति 'सर्वत्र विभाषा गो,' इस सूत्र में करके यह अर्थ करेंगे।
कि लोक और वेद में एङन्त गोशब्द को यत्प्रात तन्न भवतिय
र्यात् "एङ पदान्तो" करके जो पूर्व रूप पावेगा वह न होगा
ो कार्य चल ही जायगा प्रकृति भाव ग्रहण क्यों किया । उत्तर।
यदि 'प्रकृत्यान्त० " के स्थान पर "नान्त पाद"कर दिया जाय।
ो 'न' की अनुवृत्ति "प्लुतप्रगृ०" मे भी आवेगी तो प्लुत और
गृह्य अच् परे रहते न हो यह अर्थ होगा तब तो "आगच्छ कृष्ण३
त्र" यहां पर और 'हरी एतो,यहां पर प्लुत और प्रगृह्य संज्ञा का
ेध भी जायगा। इस वास्ते "नान्त पाद०" नहीं करना किन्तु
"प्रकृत्यान्त "ही करना ठीक है इस वास्ते कहते हैं "अथ प्रकृति
ाव" अर्थात् यहां से ही प्रकृति भाव का आरम्भ है "अवङ्
स्फो०" यह पक्ष मे प्रवृत्त होने के वास्ते लिख दिया है। प्रश्न।
"प्लुत प्रगृह्या०" इस सूत्र में प्लुतादि पदार्थ ज्ञान के लिये प्लुत

और प्रगृह्य संज्ञा-विधायक सूत्रों के अनन्तर ही "प्लुत प्रगृह्या अचि०" इस सूत्र को लिखना चाहिये फिर "इन्द्रे च" इस सूत्र के आगे क्यो लिखा । उ० । प्राचीन लोग "इन्द्रे च" इस सूत्र में 'नित्य, और पढते थे क्यो कि नित्य नहीं पढते तो पूर्व सूत्र से 'वा, की अनुवृत्ति "इन्द्रे च" में चली आती और "इन्द्रे च" से "प्लुत प्रगृह्या०, इस में भी 'वा, की अनुवृत्ति आ जाती । इस वास्ते 'नित्यम् पढते थे । सो ठीक नहीं क्यों कि यदि इस सूत्र में 'वा' की अनुवृत्ति आ जावे तो यह सूत्र ही क्यों किया । विकल्प तो "अवङ् स्फो०" से ही हो जाता फिर 'इन्द्रे च, सूत्र ही व्यर्थ हो जायगा इस वास्ते आरम्भ सामर्थ्य से ही 'वा, की अनुवृत्ति नहीं आवेगी फिर "इन्द्रे च नित्यम्,, इस में नित्य ग्रहण व्यर्थ ही है इस वास्ते 'नित्यम् नहीं कहना अर्थात् आरम्भ सामर्थ्य से ही "इन्द्रे च" से नित्य का लाभ हो जायगा, वही नित्य "प्लुत प्रगृह्या०" में भी आ जायगा फिर इस में नित्य ग्रहण क्यों किया इसी वास्ते प्रश्न करते हैं 'नित्यमिति किम्, उ० "प्लुत प्रगृह्या०" में नित्यग्रहण नहीं करेंगे तो 'हरी एतौ, यहां 'इको सवर्णे शाक०" से ह्रस्व हो जायगा क्योंकि 'हरी ईशौ, यहां पर "प्लुत प्रगृह्या०" इस सूत्र को लब्धावकाश है और 'चक्रि, अत्र यहां पर 'इको सवर्णे शा०" को लब्धावकाश है और अब 'हरी एतौ, यहा पर प्रकृति भाव और ह्रस्व दोनों प्राप्त रहे तो परत्वात् ह्रस्व हो जायगा तो 'हरिएतौ, 'हरी एतौ, दो रूप बन जायगे । अत "प्लुत प्रगृह्या० में नित्यम् ग्रहण किया है नित्य ग्रहण सामर्थ्य से यह सूत्र "इको सवर्णेशा०,, पर भी है तब भी उसका बाधक हो कर प्रकृति भाव कर देगा 'हरी एतौ, यही रूप रहेगा दो नहीं इस वास्ते नित्यम् ग्रहण किया है । भाव यह

इस सूत्र में नित्यम् का योग विभाग करना "प्लुत प्रगृह्या" इस सूत्र में नित्यम् का योग विभाग करना "प्लुत प्रगृह्या ..." एक सूत्र और "नित्यम्" दूसरा सूत्र। प्रथम सूत्र का अर्थ है कि प्लुत और प्रगृह्य अच् परे रहते प्रकृति भाव को प्राप्त होते हैं और "नित्यम्" इस सूत्र में पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति ... कर यह अर्थ होगा कि प्लुत और प्रगृह्य अच् परे रहते नित्य प्रकृति से रहते हैं। पूर्व सूत्र से ही यह कार्य हो जाय फिर नित्य ... क्यों किया तो यह ही व्यर्थ होकर नियम करेगा कि प्लुत और प्रगृह्य अच् परे रहते नित्य प्रकृति से ही रहते हैं। अन्य कार्य नहीं होता है इस वास्ते कहते हैं "हरी एतौ इत्यादौ०" हरी एतौ इत्यादि में यही प्रकृतिभाव नित्य हो "इको सवर्णे०" से ... नित्य समुचित प्रकृतिभाव नहीं है। श०। "आगच्छ कृष्ण ३ अत्र०" यहां "दूराद्धूते०" से प्लुत हुआ है यहसूत्र त्रिपादीस्थ होने से "प्लुत प्रगृह्या०" की दृष्टि में असिद्ध है तो प्रकृतिभाव नहीं होना चाहिये। उ०। यदि प्रकृति भाव विधायक की दृष्टि में प्लुत असिद्ध हो जाय तो प्लुत को प्रकृतिभाव करना ही व्यर्थ हो जाय इस वास्ते असिद्ध नहीं होता है "प्लुत प्रगृह्या०" इस सूत्र में "अवङ् स्फोटा०" से अचि की अनुवृत्ति आ जायगी पुन इस सूत्र में अचि ग्रहण क्यों किया यही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि जिस अच् को मान कर प्लुत और प्रकृतिभाव होते हैं उसी अच् निमित्तक सन्धि नहीं होती अन्य अच् निमित्तक हो जाती है। जैसे "जानु उ अस्य रुजति" इत्यादिकों में उ इसकी "ऊँ" सूत्र से प्रगृह्य सञ्ज्ञा भी है तथापि जानु में उकार को उ अस्य के उकार को "अक सवर्णे०" करके दीर्घ हो गया, यही अचि का फल है।

"इको सवर्णेशा०,, इक यह प्रथमा है क्योंकि स्यु. क्रिया का कर्त्ता है। पदान्त जो इक् है वह असवर्ण अच् परे रहते प्रकृति से रहता है विकल्प करके और ह्रस्व भी होता है। इस सूत्र में चकार से प्रकृति भाव का आगे सूत्र मे अनुकर्ष किया है सो ठीक नहीं क्योंकि ह्रस्व विधान सामर्थ्य से सन्धि नहीं होगी यदि सन्धि हो जाती तो ह्रस्व ही क्यों करते दीर्घ को भी "इकोयच" यण् कर देता तत्सामर्थ्य से क्या जानते हैं कि सन्धि नहीं होती है फिर प्रकृति भाव के अपरार्थ चकार नहीं करना। इस वास्ते कहते हैं। 'अत्र ह्रस्व०,, यहाँ ह्रस्व विधान सामर्थ्य से ही प्रकृति भाव हो जावगा पुन प्रकृति भाव के अनुकर्षणार्थ चकार नहीं करना यह भाष्य में स्थित है। "चकारो न कर्त्तव्य इति,, सका इस प्रकार से खण्डन है कि चकार से प्रकृति भाव का अनुकर्ष नहीं हो सकता। क्योंकि परिभाषा है 'चानुकृष्ट नात्तरोत्तर। चकार से जिसका अनुकर्ष होता है उसका उत्तर से सम्बन्ध नहीं होता है। इस परिभाषा में क्या प्रमाण है "ल, कर्मणि च०,, इस सूत्र में चकार क्यो किया जो प्रथम वाक्य में चकार है उसी से पूर्व वाक्य में "कर्तरि कृत्, इस सूत्र के चकार का अनुकर्ष करेंगे और उत्तर वाक्य में अनुवृत्ति ले जायगे तव भी कार्य हो जायगा फिर द्वितीय चकार व्यर्थ है कर ज्ञापन करता है 'चानुकृष्टमिति०, चकार से जो आगे से लाया जाता है उसका उत्तर में सम्बन्ध नहीं होता। तब तो यह प्रकृति भाव "ऋत्यक." इस सूत्र में नहीं जायगा उसके वास्ते ह्रस्व ग्रहण करना इस सूत्र में आवश्यक है। जब ह्रस्व करते है तो ह्रस्व विधान सामर्थ्य से ही सन्धि नहीं होगी तो पुन. प्रकृतिभाव के वास्ते

चकार नहीं करना। इसी वास्ते कहते हैं यह बात भाष्यकार भी मानते हैं यह दृढ प्रमाण दर्शित किया है। श०। कहते हैं कि सूत्र में चकार इस वास्ते किया है कि तीन रूप बनें। एक जगह तो प्रकृति भाव होकर 'चक्री अत्र, द्वितीय ह्रस्व होकर 'चक्रिअत्र, तृतीय पक्ष में चक्र्यत्र, इन तीन रूपों की सिद्धि के वास्ते सूत्र में प्रकृतिभाव के अनुकर्षार्थ चकार करना चाहिये। उ०। यदि "ऐसा मानोगे तो भाष्य विरोध हो जायगा क्योंकि वैसे तीन रूप तो संहिता की अविवक्षा मान कर ही बना सकते हैं। 'चक्र्यत्र, यहा पर 'स्कोः संयोगा०" से ककार का लोप होना चाहिये। उ०। ई के स्थान में जो यकार हुआ है उसे 'अचः पर०, " करके स्थानिवद्भाव कर लेंगे तो झल् परे नहीं रहे।। इस वास्ते लोप नहीं हुआ। श०। यहा स्थानिवद्भाव नहीं हो सकता क्यों कि "पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्,, त्रिपादीस्थ कार्य करने पर स्थानिवद्भाव नहीं होता है. "स्कोः संयोगाद्यो०,, यह त्रिपादी है इस वास्ते लोप होना चाहिये। उ०।"तस्य दोषः संयोगादि लोप लत्व णत्वेषु,, संयोगादि-लोप, लत्व, तस्य-पूर्वत्रा सिद्धे न "स्थानिवत् इत्यस्य निषेधो भवति एतत वचन न प्रवर्त्तते" नहीं लगेगा तो स्थानिवद्भाव हो जायगा श०। कहते हैं कि "ऋत्यक " यह पृथक् सूत्र क्यो किया दोनो सूत्रों के स्थान पर "अकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वस्य,, ऐसा एक सूत्र करेंगे। उ०। होतृकार, ब्रह्मर्षि इत्यादिकों में सवर्णार्थ और अनिगर्थ 'ऋत्यक, का पृथक् पाठ करना आवश्यक है। श०। पदान्तात् किं, इति-"इको सवर्णे०,, इस सूत्र में पदान्त की अनुवृत्ति क्यों की। उ०। पदान्त नहीं करेंगे तो गौरी यहा अपदान्त मे भी सूत्र लग जायगा इस वास्ते पदान्त

कहा। अब "इको यणचि,, से यण् हो गया। "न समासे" समास में ह्रस्व नहीं हो 'वाप्याम् अश्व', यहा सप्तमी तत्पुरुष करने पर वापी अश्व ऐसा रहता है यहा भी पदान्त इक् है इस वास्ते ह्रस्व पाया था वार्त्तिक ने निषेध कर दिया। "सितिच" सित् परे रहते भी ह्रस्व नहीं होता है पार्श्वम् पशूना समूह पार्श्वम् "पर्श्वा णस् वक्तव्य" इससे णस् प्रत्यय हो कर रूप बना है निषेध होने से यण् हो गया।

"ऋत्यक" ऋत् परे रहते पदान्त अक् को ह्रस्व हो विकल्प करके। ब्रह्म ऋषि" अनेन ह्रस्वे ब्रह्म ऋषि ह्रस्वाभाव पक्षे गुण ब्रह्मर्षि।

पार्श्वम्—यहा पर 'यचिभम्, इनसे भसंज्ञा प्राप्त रही थी परन्तु 'सिति च, इस करके पद संज्ञा होगई इस वास्ते 'इको राणे' से ह्रस्व प्राप्त रहा। 'सिति च-सित्, परे रहते, ह्रस्व नहीं हो इसने निषेधकर दिया, फिर 'इको यणचि, से उ का व होकर पार्श्वम् यह रूप बना। ॥ऋत्यक॥ ऋत् परे रहते पदान्त अक् को ह्रस्व हो विकल्प करके। इस सूत्र में भी पदान्त की अनुवृत्ति करना। इस वास्ते कहते हैं—पदान्ता इत्येव। फल है आऋच्छत् यह ऋच्छ धातु का लङ् का रूप है ॥आडजादीनाम्॥ इसे करके आट् आगम हो गया। यह आट् यदागमपरिभाषा से ऋच्छ का अवयव है पदान्त नहीं है किन्तु पदका आदि है पदान्त तकार है इस वास्ते ह्रस्व नहीं होता। समासे इति—यह सूत्र समास में भी ह्रस्व करता है—क्योंकि 'अनन्तरस्य विधि प्रतिषेधोवा, इस न्याय से 'न समासे, वार्तिक 'इको सवर्णे, का निषेध

-करता है सत च ते अपय तेषामिति समास यहा अटक॰ हो गया वक्ष्यास्यटे॰ इत्यधिकृत्य इसका अधिकार करके स्वस्मिन् फल शून्यत्वेसति उत्तरोत्तरैक वाक्यतया फलनिष्पादकत्वम् अधिकारत्वम् । प्रत्यभिवादे इति॰ अभिवादम ॰ प्रति इति प्रत्यभिवादम तस्मिन् प्रत्यभिवादे अश ूद्रविषयक जो प्रत्यभिवाद (आशीर्वाद का उत्तर देना) तद्बोधक जो वाक्य उसकी टि को प्लुत हो और वह उदात्त हो ॥ "अभिवादये देवदत्तोऽहम्" यह अभिवादन है । भो आयुष्मानेधि देवदत्त ३ यह प्रत्यभिवाद है । इसकी टिको प्लुत हो गया । स्त्रियामिति । स्त्री विषय जो प्रत्यभिवाद उसकी टिको प्लुत नहीं हो । अभिवादये गार्यहम् यह अभिवादन है भो आयुष्मती भव गार्गि यह प्रत्यभिवाद है यहा गार्गी घटक इकार को प्लुत नहीं हुआ । नामगोत्रमिति । ' यत्र प्रत्यभिवाद वाक्ये जिस प्रत्यभिवाद वाक्य के अन्त में नाम अथवा गोत्र का प्रयोग किया जाय वहा पर ही प्लुत इष्ट है नेह यहा नहीं होता है । आयुष्मा नेधि भो ३ यहा गोत्र अथवा नाम का उच्चारण नहीं है । भोराजन्यविशामिति । भोराजन्यविश इनो की टि को विकल्प करके प्लुत हो भो ब्राह्मण विट् वैश्य राजन्य क्षत्रिय दूराद्धूतेच दूर से सम्बोधन विषयक जो वाक्य उसकी टिके अन्यको प्लुत हो । हूतमाह्वान तदसम्बोधन मात्रस्योप लक्षणम् है है प्रयोगे इति॰ । दूराद्धूते च इत्यनेन अस्यस्य प्राप्त नियमार्थमिदम् है है के प्रयोग में दूर से सम्बोधन विषयक जो वाक्य उस वाक्य में है है को ही प्लुत हो अन्य को नहीं हो । गुरोरनृतइति दूर से सम्बोधन विषयक जो वाक्य उस वाक्य घटक ऋत् भिन्न अनन्त्य गुरु अथवा अपिशब्द से अन्त्य अगुरु

उसको प्लुत हो विकल्प करके। देवदत्त शब्दे क्रमेण प्लुतो भवति दकार घटक एकारस्यो दकारवृत्त्य रकारस्य तकारवृत्त रकारस्य चप्लुत । गुरो किमितिगुरु क्यों कहा। वकारात्पर० वकार से पर अकार को प्लुत न हो इस वास्ते गुरु कहा। अनृत किम् ऋत भिन्न क्यों कहा। कृष्ण ३ यहां क्रमे ऋ को प्लुत नहीं हुआ। ष्ण में अकार को दूराद्धूतेच से हो गया। एकैक मिति । एतस्मिन् प्रयोगे एकस्यैव प्लुतो भवति सर्वेषा नेति । एक का द्वित पर्यायार्थ है। अर्थात् क्रम बोधक है। एक प्रयोग में एक को ही प्लुत हो दो को अथवा तीनो को नहीं हो इस वास्ते है यहा प्राचा इसका योग विभाग करना 'गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य, एक सूत्र है। और प्राचाम् यह द्वितीय सूत्र है पूर्व सूत्र का तो वही अर्थ करना जो कर चुके हैं। और प्राचाम् इसका यह अर्थ करना कि पाच सूत्रों से जो प्लुत होता है वह विकल्प करके होता है तेन सर्व० । इससे सम्पूर्ण प्लुत विकल्प करके होंगे। अप्लुतवदिति० इससे सूत्र में उपस्थित शब्द से लौकिक प्रयोग का ग्रहण है क्योंकि उपस्थित लौकिक प्रयोग ही है तद्भिन्न अनुपस्थित वैदिक प्रयोग है इति शब्द भाष्यकृत व्याख्यान से लब्ध हुआ है। भाष्यकारने ही इति शब्द का अध्याहार किया है इस वास्ते वृत्ति मेंइति शब्द, पदाऽपस्थितका अर्थ है अनार्ष इति शब्द अर्थात् वेदभिन्न इति शब्द परे रहते प्लुत अप्लुतवत् हो। भाव यह है कि प्लुतभी बना रहे और सन्धि भी हो जाय यह अप्लुतवत् का अर्थ है। इसी वास्ते कहते है—अप्लुत कार्यमिति० अप्लुत को जो यणादि कार्य होते हैं वे कार्य हों। सुश्लोक ३ इति यहा ककार वृत्ति ऋकार को दूराद्धूते च से त हागया। फिर अप्लुतवदुपस्थिते

इसने प्लुत को अप्लुतवत् कर दिया तो 'प्लुत प्रगृह्या अचिनित्यम्' से प्रकृतिभाव नहीं हुआ। फिर आद्गुण गुण होकर-सुश्लोकेति यह रूप बना। सुश्लोक ३ इति यह प्लुत करके वाक्य दिखाया है। और सुश्लोकेति यह अप्लुतवद् भाव करके दिखाया है। विकल्प पक्ष का नहीं है। शका-वत्किमिति० अप्लुतवदुपस्थिते इस सूत्र में "वत्" क्यों कहा-अप्लुत उपस्थिते ऐसा सूत्र करेंगे। क्योंकि इसमें २ मात्रा का लाघव है-यदि अप्लुतवत् नहीं करेंगे तो सूत्र का क्या अर्थ होगा अप्लुत शब्द से प्लुत शब्द का अध्याहार करेंगे तो-यह अर्थ होगा कि वेद भिन्न इति शब्द परे रहते प्लुत अप्लुत हो-अर्थात् प्लुत की व्यावृत्ति हो जाय प्लुत की व्यावृत्ति होने से यणादि कार्य हो ऐसा करने में भी कार्य चल जायगा। उत्तर।-यदि वत् नहीं करोगे तो क्या अर्थ होगा कि प्लुत अप्लुत हो-तब तो अग्नि शब्द से औ विभक्ति किया अग्नि औ इस अवस्था में प्रथमयो पूर्वसवर्ण इस करके दीर्घ होगया तो अग्नी इति ऐसा हुआ-अब यहां दूराद्धूते च से अग्नी के इकार का प्लुत किया-और ईदूदेद्द्विवचन प्रगृह्यम् इससे अग्नी की प्रगृह्य संज्ञा की अब अप्लुत वदुपस्थिते इस करके प्लुत को अप्लुत किया-अर्थात् प्लुत की व्यावृति की। अब सन्धि तो होगी नहीं क्योंकि-ईदूदेद् द्विवचन० करके प्रगृह्य संज्ञा कर दिया गया है-फिर क्या होगा प्लुत का श्रवण नहीं होगा और सिद्धान्त में प्लुत का श्रवण होता है-यह दोष आवेगा। इस वास्ते सूत्र में वत् ग्रहण किया (इसी बात को लिखते हैं अप्लुत इत्युक्ते सति अप्लुत ऐसा सूत्र में कहने से अप्लुत का ही विधान करेगा। और प्लुत का निषेध कर देगा। वृथा चेति० दर्शयति दिखाते हैं जहां प्रगृह्याश्रय प्रकृति

भाव होगा वहां प्लुत का श्रवण नहीं होगा (अग्नी ३, इति यहां पर) इस वास्ते वत् किया। शंका—अग्नी इति, यहां पर जब दूराद्धूते च करके प्लुत हो गया फिर ईदूदेद्द्विवचन प्रगृह्यम् इससे प्रगृह्य संज्ञा प्राप्त रही तब उस प्रगृह्य संज्ञा को बाध कर परत्वात् अप्लुतवदुपस्थिते इस करके अप्लुतवद्भाव होकर सन्धि होना चाहिये। उत्तर। अप्लुत वदुपस्थिते यह इति परे मानता है इस वास्ते पर निमित्तकत्व बहिरंगत्वम्—इससे अप्लुत वदुपस्थिते यह बहिरंग हुआ—और ईदूदेद्द्विवचनम् यह वर्ण संज्ञा की अपेक्षा करता है इस वास्ते अन्तरंग है—तो, असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे इससे अन्तरंगत्वात्—ईदूदेद्द्विवचन में प्रगृह्य संज्ञा होगी अप्लुतवत् नहीं होगा इस वास्ते दोष नहीं है। शंका। भाष्य में तो अप्लुतकार्य नहीं हो ऐसा लिखा है फिर आप भाष्य से विरुद्ध अप्लुतवत् हो ऐसा अर्थ क्यों करते हो। उत्तर—भाष्यकार ने फलित अर्थ लिखा है, उन का भी यही तात्पर्य है ॥ ई ३ चाक्रवर्मणस्येति—यहां चाक्रवर्मण ऋषि है। प्लुत ईकार से अच् परे रहते अप्लुतवद्भाव विकल्प करके हो। विकल्प अर्थ—चाक्रवर्मणस्य का है। चिनु ३ हीं ३ इति यहां चिनु किया है—ही ३ यह अव्यय है। यहां हि के इकार को अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयो। इससे प्लुत हो गया। तब ई ३ चाक्रवर्मणस्य इसने प्लुत को अप्लुतवत् कर दिया—तो अकः सवर्णे दीर्घः इससे दीर्घ हो गया। विकल्प करने से चिनुहीदम्—पक्षे—चिनुही ३ इदम् एवं चिनुहीं ३ इति—चिनुहीति यहां भी जानना। उभयत्र विभाषेयमिति यह उभयत्र विभाषा है अर्थात् यहां चिनुहीति में 'अप्लुतवदुप०, इससे नित्य प्राप्त था और चिनुहीदम् यहां अप्राप्त था इस वास्ते यह प्राप्त विभाषा हुआ।''ईदूदेद्

द्विवचनं०" इस सूत्रमें ईत् ऊत् एत् विशेषण और द्विवचन विशेष्य है 'येन विधिस्त०, करके तदन्तविधि हो गई तो यह अर्थ हुआ कि ईदन्त ऊदन्त एदन्त द्विवचन प्रगृह्य संज्ञक हो। तदन्त विधि का फल पचेते इमौ इत्यादि में है। यहां पच् आतम् शप् प्रत्यय 'आतोङित" 'आद्गुणः, टित् आत्मने इति एत्वे पचेते इति रूप यहां एदन्त है और द्विवचन है इस वास्ते प्रगृह्य संज्ञा हो गयी। इसी वास्ते तदन्त विधि की है। 'हरी एतौ, इत्यादिकों में फल नहीं है क्योंकि परादिवद्भावेन ईकारादिकों को द्विवचन मान कर ईत् ऊत् एत् रूप द्विवचन प्रगृह्य संज्ञक हों ऐसा अर्थ करने पर भी कार्य हो सकता है द्विवचन शब्द में तदन्त विधि नहीं होती है, क्योंकि "संज्ञा विधौ प्रत्यय ग्रहणे तदन्तग्रहणन्नेति,, संज्ञा विधि में प्रत्यय के ग्रहण में तदन्त ग्रहण नहीं होता है इससे तदन्त विधि का निषेध होगया इस परिभाषा में ज्ञापक "सुप्तिङन्त०,, में अन्त ग्रहण ही है। तदन्त विधि का निषेध होने से 'वध्वोरगारम' 'वध्वगारम्, इत्यादि प्रयोग सिद्ध हो गये, अन्यथा यहाँ भी प्रत्यय लक्षण से षष्ठी का द्विवचन ओस् मान कर प्रगृह्य संज्ञा हो जायगी इस वास्ते तदन्त विधि का निषेध करना। हरी एतौ में ईदन्त तो स्वयं ही है परन्तु द्विवचन परादिवद् भाव से मान कर प्रगृह्य संज्ञा करना। मणीव इति यहां कोई मणी इस को द्विवचनान्त समझता था और आगे इव का छेद करता था और प्रगृह्य संज्ञा के निषेधार्थ 'मणीवादीनां, प्रतिषेधो वक्तव्य, ऐसा वार्त्तिक पढ़ता था सो वार्त्तिक करना अयुक्त है क्योंकि भाष्यादिकों में यह वार्त्तिक नहीं मिलता है इस वास्ते ग्रन्थकार कहते हैं 'मणीवोष्ट्रस्येति; मणीव यहां इवका छेद नहीं है किंतु इव अर्थ में व

अथवा की शब्द है। इसी वास्ते मेदिनी कोषकार लिखते हैं "व प्रचेतसि जानीयात् इवार्थे च तदव्ययम्,, "वा यथा तथैवैव साम्ये,, इत्यमर। इस वास्ते 'मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते, यह साधु हो गया।

"अदसोमात,, इसमें ईत् ऊत् की अनुवृत्ति करना व्यर्थ ही नहीं क्योंकि मकार से परे ऐत असम्भव है अदस शब्द के मकार से परे ईत् ऊत् प्रगृह्य सञ्ज्ञक हों, अमी इगा यहा अमी यह अदस् शब्द के जस् का प्रयोग है, द्विवचन नहीं है इस वास्ते पृथक् सूत्र किया। अमू आसाते इति यहा अदस् शब्द से औ विभक्ति किया सकार को 'त्यदादीनाम,, से अकार 'अदसोसेर्दा०, से ऊत्व मत्व होकर अमू बना है। शं० यहां "ईदूदे द्वि०,, इसी सूत्र करके प्रगृह्य सञ्ज्ञा हो जाती फिर 'अदसोमात, मे ऊत् की अनुवृत्ति क्यों की। उ० यहां अमू यह पुलिंग का उदाहरण है नपुंसक तथा स्त्री लिंग का नहीं है क्योंकि नपुंसक और स्त्री लिङ्ग मे 'अदे, बन कर फिर "अदसो से,, से एका ऊ और 'द का म, होता है तब तो मूत्व की असिद्ध होने से एदन्त द्विवचन मिलता है तो "ईदूदेद्द्विव०, से प्रगृह्य सञ्ज्ञा हो सकती है। परन्तु पुलिङ्ग मे अदौ बना कर अदसो० इस सूत्र से औ का ऊ और द का म होता है तब तो पूर्व सूत्र से प्रगृह्य सञ्ज्ञा नहीं हो सकती है क्योंकि सूत्र को असिद्ध मानने पर भी अदौ इष्ट होगा इस वास्ते ईदूदे द्विवचन इस सूत्र की प्राप्ति नहीं है इसी वास्ते सूत्र कार रामकृष्णौ यह पुलिंग शब्द, अमू के साथ प्रयुक्त करते हैं कि अमू भी पुलिंग है। शङ्का। अदसोमात् कि दृष्टि में मूत्व असिद्ध है फिर अदसो मात् कैसे लगा॥ उ०॥ आरम्भ सामर्थ्य से मूत्व असिद्ध नहीं होता है॥प्र०॥ 'अदसो मात्, इस सूत्र मे

त् ग्रहण क्यों किया अदस. ऐसा ही सूत्र करेंगे (उत्तर) मात्
हण नहीं करोगे तो इत् उत एत् तीनों की अनुवृत्ति आजायगी.
तो अदस् शब्द से अकच् प्रत्यय किया और अदसो सेर्दा०
स्मसे द, को म. और अ को उ अमुक जस् प्रत्ययशी आदेश आद-
गुणः अमुके ऐसा रूप बना अत्र अत्र के साथ सम्बन्ध किया तो
अमुके अत्र इस अवस्था में अदस् शब्द से परे एकार है तो-
प्रगृह्य सज्ञा हो जायगी पूर्व रूप नहीं होगा इस वास्ते मात् ग्रहण
करना प्र० । मात् ग्रहण करने पर भी एकार की अनुवृत्ति क्यो-
नहीं होवी उ० । मकार से परे एकार असम्भव है कहीं मिलता
ही नहीं है इस वास्ते सिद्धान्त में एकार की अनुवृत्ति नहीं होती
प्र० मात् ग्रहणाभाव मे एकार की अनुवृत्ति आने पर भी अमु-
के अत्र यहा दोष नहीं है क्योंकि यह तो अमुक शब्द है
अदस् शब्द ही नहीं ॥ उत्तर ॥ यन्मध्ये पततितस्तद्ग्रहणेन
गृह्यते । जो जिसके मध्य मे पतित होता है
उसका उसी शब्द से ग्रहण होता है । इस वास्ते अदस् शब्द से
अमुक शब्द भी लिया जायगा इस वास्ते एकार की अनुवृत्ति न
हो एतदर्थ मात् ग्रहण है। इस वास्ते मूल कार लिखते हैं अस-
तीति मात् ग्रहणे असेतिमात् ग्रहण नहीं करोगे तो एकार की
अनुवृत्ति आजावेगी शे, यह भी प्रगृह्य सज्ञक होता है यद्यपि
छन्द में लगता है तथापि प्रकरणवस यहा लिखा । अस्मे इति
स्थम स्थाने सुपासु० इति शे आदेशे अस्मे इति रूपम । निपात
एकाजनाङिति । एकश्चासौ अच इति एकाच् इति समास ।
मे आङ् अनाङ् । एकाच् रूप, निपात आङ् को वर्ज कर प्रगृह्य
सज्ञक हो । एक आङ् दूसरा आता यह सूत्रङित् आङ् को छोडकर
प्रगृह्य सज्ञा करता है इस वास्ते कहते हैं अनाङित्युक्ते रिति अनाङ

ऐसा कहने से अङित् आकार प्रगृह्य संज्ञक होता है। आ एव नुमन्यसे प्रथम नहीं मानते थे, इदानीं आएवनुमन्यसे अब इस प्रकार मानते हो—यह वाक्य है। आएवकिलतत् यह वही पुरुष है जो प्रथम देखा था, यह स्मरण है। सूत्रङित् आङ् को वर्ज कर प्रगृह्य संज्ञा करना है। इस वास्ते कहते हैं। ङित्तु इति—ङित् आङ् तो प्रगृह्य संज्ञक नहीं होता है। आउष्णम् आद्गुण। ओष्णम्—इसका अर्थ क्या है ईषदुष्णम् थोड़े गर्म अर्थ का बोधक आङ् है। हमें कैसे ज्ञात होगा कि यह आङ् है और यह आ है—क्यों कि—आङ के ङ की इत्संज्ञा होकर आ रह जाता है—इस वास्ते आङ आ में भेद कैसे ज्ञात होगा। इस बात को कहते हैं ईषदर्थे इति—थोड़े अर्थ में क्रिया के योग में, मर्यादा में और अभि विधि में आ को ङित जानना। वाक्य में और स्मरण में अङित् जानना। 'ओत्' ओदन्त निपात प्रगृह्य संज्ञक हो।

"सम्बुद्धौ" यह निमित्त सप्तम्यन्त है। सम्बुद्धि निमित्तक ओकार प्रगृह्य संज्ञक हो अवैदिक इति शब्द परे रहते विकल्प करके। अनार्ष इति कि। यदि वेद भिन्न नहीं कहते तो ब्रह्म बन्धो इत्यब्रवीत यहां बन्धो यह सम्बुद्धि निमित्तक ओकार है इसकी भी प्रगृह्य संज्ञा हो जाती इस वास्ते अनार्ष कहा यह आर्ष प्रयोग है। "उञः"। उञ् की प्रगृह्य संज्ञा हो अवैदिक इति शब्द परे रहते विकल्प करके। पक्ष "ऊँ" उञ् को इति शब्द परे रहते अनुनासिक और प्रगृह्य संज्ञक ऊँ आदेश हो विकल्प करके। पक्ष में उको यणचि इति यण्। उदाहरण त्रय भवति उ, इति—ऊँ इति—विति।। "मय उञो वोवा" से परे उ अ को व आदेश हो विक

करके अच् परे रहते। किमु + उक्तम्। अत्र "इकोयणचि" इति सूत्रं बाधित्वा " निपात एकाजनाङ् " इत्यनेन प्रगृह्य संज्ञा प्राप्ता तदर्थमस्यारम्भ इति। एकस्मिन्पक्षे अनेन वकारः द्वितीय पक्षे प्रगृह्य संज्ञा। शं० (किंवुक्तम् यहां हल् परे वकार है—इस वास्ते 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार क्यों नहीं होताहै। उ० नत्वस्यासिद्धत्वान्नानुस्वार 'मोनुस्वार" सूत्र की दृष्टि में 'मय उञो वो वा, यह सूत्र त्रिपादी होने से असिद्ध है इस वास्ते अनुस्वार नहीं होता है। अर्थात् हल् परे नहीं है अच् परे है। अन्यथा 'इको यणचि, इत्यस्या नन्तरमस्य पाठेन यणो ऽनुवृत्त्यावेव सिद्धे वत्व विधानस्य वैयर्थ्यं स्यादिति। अर्थात् 'इकोयणचि, इस सूत्र के अनन्तर 'मय उञो वा, ऐसा सूत्र करके यण् की अनु वृत्ति करेंगे और यह अर्थ करेंगे कि मय् से परे उञ् को यण् हो विकल्प करके अच् परे रहते तब भी कार्य चल जायगा अर्थात् सपाद सप्ताध्यायी में पाठ करने से लाघव था त्रिपादी में गौरव रूप पाठ इसी वास्ते किया है कि अनुस्वार नहीं हो ? वास्तविक में तो यह बात है कि त्रिपादी में पाठ का फल प्रत्यङ्ङास्ते इत्यादि में वत्व को असिद्ध होने से उकार रूप अच् परे है इस वास्ते 'ङमो ह्रस्वा दचि" इस करके ङमुट् होगया यह त्रिपादिक में करने का फल है। किन्वुक्तम् में तो सन्निपात परिभाषा से ही अनुस्वार नहीं होगा।

"ईदूतौ च स० " सप्तम्यर्थ मात्र में (पर्यवसन्न) जिन्हों की समाप्ति हो गई है, ऐसे ईदन्त ऊदन्त शब्द प्रगृह्य संज्ञक हों। अर्थात् केवल सप्तम्यर्थ मात्र में वर्त्तमान ईदन्त ऊदन्त शब्द प्रगृह्य संज्ञक हों। सोमो गौरी इति यहा गौरी कि अधिश्रित ऐसा था

"सुपा सु०" इससे ङि का लोप होगया। "य शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी" जो शेष रहता है वह लुप्यमान के अर्थ को भी कहता है यहां ङि का लोप होकर शेष गौरी है तो गौरी यह अधिकरण अर्थ को कहेगा इस वास्ते प्रगृह्य सञ्ज्ञा हो गई यण् नहीं हुआ।

इसी प्रकार तनू ङि इति में भी जानना ॥ "ईदूतौ च सप्तम्यर्थे" इस सूत्र की जगह लाघवार्थ "ईदूतौ सप्तमी" ऐसा सूत्र करेंगे और सप्तमी यह प्रत्यय है "प्रत्यय ग्रहणेतदन्त ग्रहणम्" इससे तदन्त विधि हो जायगी तो क्या अर्थ होगा ईदन्त ऊदन्त जो सप्तम्यन्त सो प्रगृह्य सञ्ज्ञक हों यह अर्थ करने से सोमो गौरी अधिश्रित मामकी तनू इति इत्यादिकों में प्रत्यय लक्षण से सप्तम्यन्त मानेंगे और ईदन्त ऊदन्त रूपस्वयमेव है-इस वास्ते प्रगृह्य सञ्ज्ञा हो जायगी। फिर सूत्र में अर्थ ग्रहण क्यों किया-इस वास्ते कहते हैं 'अर्थ ग्रहण किम्, अर्थ ग्रहण क्यों किया। यह प्रश्न हुआ। उत्तर करने वाले का यह आशय है अर्थ ग्रहण नहीं करेंगे तो "संज्ञा विधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहण नास्ति"। सञ्ज्ञा विधि में प्रत्यय के ग्रहण में तदन्त ग्रहण नहीं होता है। इससे निषेध हो कर तदन्त विधि नहीं होगी तो यह अर्थ होगा कि ईकार ऊकार रूपा जो सप्तमी सो प्रगृह्य सञ्ज्ञक हो। इसके करने में ययी, अहि आस्ते (यहां पर ङकार की इत् सञ्ज्ञा हो गई और "अक सवर्णे" से दीर्घ होकर ययी आस्ते ऐसा रूप बना अब यहां एकादेश को परादिवद्भाव से ईकार रूपा सप्तमी है-तो यहां पर भी प्रगृह्य संज्ञा हो जायगी।

'सोमोगौरी अधिश्रित ' इत्यादिकोंमें नहीं होगी क्योंकि सप्तमी का तो लोप हो गया ईकार रूपा सप्तमी नहीं है इस वास्ते अर्थ ग्रहण करना चाहिये। कहो कि प्रत्ययलक्षणादेव सप्तमी मानेंगे तब भी ईकार रूपा सप्तमी नहीं है किन्तु सप्तम्यन्त है जो ईकार है सो सप्तमी का नहीं है जो प्रत्यय लक्षणेन सप्तमी मानते हैं सो ईकार रूपा नहीं है। 'तत्रापि सरसि यदि' इस भाष्य से ययी पपी इत्यादि प्रयोगों का अनभिधान होने से सूत्र व्यर्थ हो जायगा इस वास्ते सूत्रारम्भ सामर्थ्य से "संज्ञा विधौ प्रत्यय ग्रहणे तदन्त विधिर्नास्ति" यह परिभाषा नहीं लगेगी सो तदन्त विधि हो जायगी पुन अर्थ ग्रहण क्यों किया। अथवा कदाचित् ईकारांश मे सूत्र चरितार्थ भी हो जाय परन्तु ऊकारांश में व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि ऊकार रूपा सप्तमी कहीं नहीं है इस वास्ते ग्रहण सामर्थ्य से तदन्त विधि हो जायगी "संज्ञा विधौ" परिभाषा नहीं लगेगी। अथवा 'ईदूदेद्द्वि०, "अदसोमात्" "ईदूतौ च स०,, इन तीनों के स्थान पर ऐसे सूत्र करेंगे" ईदूतौ सप्तमी प्रगृह्यम्" "अदस" "एच्च-द्विवचनम्" ऐसा न्यास करने से ही सर्वत्र निर्वाह हो जायगा और लाघव भी है फिर आचार्य ने गुरुभूत न्यास क्यों किया इस गुरुभूत न्यास करने से हम क्या जानते हैं कि "संज्ञा विधौ प्रत्यय०" यह परिभाषा नहीं लगती है तो तदन्त विधि हो जायगी ईदन्त ऊदन्त जो सप्तम्यन्त सो प्रगृह्य संज्ञक हो ऐसा अर्थ होगा तो सोमो गौरी अधिश्रित मामकी तनूइति इत्यादि सिद्ध हो ही जायगे फिर अर्थ ग्रहण क्यों किया। यही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि सप्तम्यर्थ मात्र में वर्तमान ईकारान्त ऊकारान्त शब्द हों तभी प्रगृह्य संज्ञा हो "वृत्तावर्थान्तरोप सक्रान्ते मा भून् इति,,

अर्थान्तर में उपसक्रान्त, जो समास रूपा वृत्ति है उसकी प्रगृह्य संज्ञा न हो। अर्थात् "कृत्तद्धित समासैकशेष सनाद्यन्त धातु रूपा पञ्च वृत्तय" यह पाच वृत्ति हैं इनमें समास भी वृत्ति है वृत्ति क्या होती है "परार्थाभिधानं वृत्ति" जो दूसरे के और अपने अर्थ को खिचड़ी बना देवे वही वृत्ति है इसी वास्ते दर्पणकार कहते हैं "समासे खलु भिन्नैव शक्तिः पङ्कज लक्षणा" समास में शब्दों की वृत्ति अर्थात् प्रवृत्ति विचित्र रूपा हो जाती है जैसे पंकज यहां पङ्कात् जात पंकज, जो कीचड़ से पैदा हो वही पङ्कज होता है कीचड़ से तो कीड़े पैदा होते हैं उन्हीं का नाम पङ्कज होना चाहिये। परन्तु यहां कमल का नाम है यह कैसे इस वास्ते कहना कि यह शक्ति से कमल को कहता है। इसी प्रकार वाप्यां अश्व वाप्यश्वः यहां पर भी वाप्यधिकरणक अश्व यह वाप्यश्व का अर्थ है। यहाँ केवल सप्तम्यर्थ मात्र में वर्तमान वापी शब्द नहीं है किन्तु वाप्यधिकरणक अश्व इस अर्थ में है इस वास्ते अर्थान्तर में उपसक्रान्त यानी गमन करने वाली वृत्ति हो गयी केवल वाप्यधिकरणक अर्थ नहीं रहा जब वाप्यधिकरणक अर्थ होगा तभी प्रगृह्य संज्ञा होगी अन्यथा नहीं इस वास्ते अर्थ ग्रहण किया है। नोटः—अर्थान्तरोपसङ्क्रान्ते माभूदिति, दूसरे अर्थ में उपसंक्रान्त याने गमन करने वाली जो वृत्ति समासादि है उन्हों में नहीं हो यह तात्पर्य है। शं०। सोमो गौरी अधिश्रित इत्यादिकों में इस विभक्ति का लोप नहीं करेंगे किन्तु 'सुपांसुलुक्' से पूर्व सवर्ण करेंगे। तबतो परादिवद्भावेन ईकार रूप सप्तमी मिल जावेगी। सूत्र भी चरितार्थ हो जायगा फिर सूत्रारम्भ सामर्थ्य से तदन्त विधि कैसे। उ०। यहां पूर्व सवर्ण नहीं हो सकता क्योंकि पूर्व सवर्ण को बाध कर परत्वात् आङ्गत्वात् को

मात् और माटादि हो जायगे। 'मणो प्रगृह्यस्येति, । अवसान में वर्त्तमान प्रगृह्य संज्ञक मण् को अनुनासिक हो विकल्प करके। इसमें मण् पूर्वणकार से लेना प्रगृह्य पर्युदास होने से। क्योंकि मच् ही पढ देते हल् की प्रगृह्य संज्ञा होती ही नहीं। 'प्रगृह्यस्येति किम्' प्रगृह्य क्यों, कहा अग्नी यहाँ 'ईदूदेद्द्विवच०, से प्रगृह्य संज्ञा है इस वास्ते यहा अनुनासिक नहीं हो अत, अप्रगृह्य कहना। इत्यत्र सन्धि यहा चोः कु से कुत्व नहीं करना अल्पाच्तरम् इत्यादि निर्देश से अथवा सन्देह हो जाता इस वास्ते सन्धि नहीं की।

॥ इत्यच्संधि. ॥

"अथ हल् सन्धि प्रकरणम्"

"स्तोःश्चुनाश्चु"। सूच तुश्चेति समाहार द्वन्द्व। सौत्रत्वात् पुस्त्वम्। श्च चुश्च तेन श्चुना। सकार तवर्ग को शकार चवर्ग के योग में शकार चवर्ग हों। यहा स्थानी और आदेश का यथा सख्य है। अर्थात् सकार को शकार होता है और तवर्ग को चवर्ग होता है योग चाहे शकारका हो अथवा चवर्ग का हो। निमित्त के साथ यथा सख्य नहीं है। यदि निमित्त के साथ होता तो "शात् यह निषेध सूत्र ही व्यर्थ हो जाता। इस वास्ते जानते हैं कि स्थानी और आदेश का यथा सख्य है निमित्त का नहीं। यहा योग का सयोग अर्थ है अर्थात् शकार चवर्ग का सयोग होना चाहिये। हरिश्शेते यहा "वा शरि' से पक्ष में विसर्ग भी होता है। हरिः शेते बनता है।

"शात्" शकार से परे तवर्ग को चवर्ग नहीं हो। प्रश्न इति। यहां 'प्रश्ने चासन्न काले" इस- ज्ञापक से र को सम्प्रसारण नहीं होता है।

'ष्टुनाष्टु" यहा स्तो की अनुवृत्ति आती है सकार तवर्ग को षकार टवर्ग के योगमें षकार टवर्ग हों।

सकार को षकार हो तवर्ग को टवर्ग हो। यहा भी पूर्व वत् स्थानी आदेश का यथा सख्य है, निमित्त आदेश का नहीं 'तो षि' इस निषेध से। पेष्ता इति स्थिति। तत् टीका—न पदान्ताट्टो रनामिति। अनाम्-यह लुप्तषष्ठी—पद है। पदान्त टवर्गसे परे नाम भिन्न सकार तवर्ग को षकार टवर्ग न हों। पदान्त क्यों कहा ईट् ते—लटि रूपम्—अत्र तकार वृत्ति एकारे पदान्तत्वमस्ति अत ष्टुत्वत्रेति। षट् सन्त षट् ते— यहा दो पद हैं—यहा 'ष्टुनाष्टुः' से स का ष और त का ट प्राप्त था, इसने निषेध किया। शका (एक योग निर्दिष्टाना सहवा प्रवृत्ति सह वा निवृत्ति) परस्पर अन्वितार्थक पदों की साथ में ही प्रवृत्ति होती है और साथ मे ही निवृत्ति होती है, इस परिभाषा के बल से पूर्व पठित 'ष्टुनाष्टु' इस सूत्र से ष्टु की अनुवृत्ति करके पदान्त षकार टवर्ग से परे सकार तवर्ग को षकार टवर्ग नहीं हो ऐसा अर्थ करने पर भी निर्वाह हो जायगा पुन सूत्र में टोः ग्रहण क्यों किया। उ०—सर्पिस् शब्द से तमप् प्रत्यय किया सर्पिस् तमप् ऐसा हुआ यहां 'हस्वान्तादौ तद्धिते, इस से सकार को षकार किया सर्पिष् तमम् ऐसा हुआ अब यहा पर टो, ग्रहण करते हैं तबतो 'नपदान्ताट्टोराम्, निषेध नहीं होता है क्यों कि टवर्ग से परे नहीं हैं अब षकार टवर्ग दोनों से परेनिषेध करेगा तो यहा भी

तवर्ग का टवर्ग नहीं होगा इस वास्ते टो. ग्रहण करना चाहिये। अब टो करते हैं तब निषेध नहीं हो सकता है क्योंकि 'टवर्ग मे परे नहीं है। शका। 'सर्पिष्टमम्'में तो दोष नहीं होगाक्योंकि जहाँ जहा पदान्त में षकार मिलेगा वहां २ "झलाजशोन्ते" से षकार का डकार हो जायगा तब तो सर्पिष्टमम् यह प्रयोग ही ठीक नहीं। उत्तर। सर्पिष्टमम् यहां'झलाजशोन्ते,से ष का ड नहीं होता है क्योंकि 'ह्रस्वान्तादौ तद्धिते, इस सूत्र से विहित जो षकार है वह जश्त्व की दृष्टि में असिद्ध है अर्थात् 'झला जशोऽन्ते, को दन्त्यसकार दीखता है इस वास्ते षकार का डकार नहीं होगा तो यहा भी निषेध हो जायगा इस वास्ते टो ग्रहण करना चाहिये। शका। "झलां जशोऽन्ते"की दृष्टिमें 'ह्रस्वान्तादौतद्धिते' से विहित षकार असिद्ध है तो स को 'झला जशोऽन्ते, दकार कर देगा तब भी पदान्त में।षकार नहीं मिलेगा, फिर टोः ग्रहण क्यों किया? उत्तर—यहा सकार का दकार नहीं हो सकता है क्योंकि 'झला-जशोऽन्ते' करके जो स का द पावेगा "अर्थात् जश्त्व"इस जश्त्व को बाधकर 'ससजषोरु , करके रु पावेगा और रुत्व विधायक को बाध कर 'ह्रस्वान्तादौ तद्धिते, से षकार पावेगा और 'ह्रस्वान्तादौ तद्धिते, इसमें विहित षकार को असिद्ध होकर स का'झला ज०, करके द पावेगा, फिर रुत्व फिर रुत्व को बाधकर षत्व फिर षत्व को डत्व फिर डत्व को असिद्ध होनेसे स का द फिर द को रुत्व इस प्रकार 'चक्रकापत्ति' दोष आवेगा-इस वास्ते 'झला जशोन्ते'-नहीं लगेगा तो सर्पिष्टमम् ऐसाही रूप बनेगा यहां 'न पदान्ताट्टोरनाम्' इससे षकार से परे ष्टुत्व का निषेध नहीं हो इस वास्ते टो ग्रहण करना चाहिये। श०। 'कचिदेकदेशो प्यनुवर्तते, इस न्यायसे केवल टो. की अनुवृत्ति करके और उसे पञ्चम्यन्त मान कर, कार्य हो

जायगा फिर टो. ग्रहण क्यों किया। उत्तर "तो षि" इस सूत्र में तो. ग्रहण सामर्थ्य से यह न्याय यहां नहीं लगता है अन्यथा-स्तो श्चु नाश्चुः से तो ले आते फिर तो ग्रहण ही व्यर्थ हो जाता। इस वास्ते टोः ग्रहण करना। सूत्रकारस्य न्यूनतां दर्शयति अनाम्नवति इति। नामभिन्न नवति भिन्न नगरी भिन्न ष्टुत्वका प्रतिषेध कहना। षष् नाम् 'झलाञ्जशोऽन्ते' इति षकारस्य डत्वम् प्रत्यये भाषायामिति डकारस्य णकार षण्णवतिः इत्यत्र यरोनुना० इति विकल्पेन णत्वम्। 'तो षि' तवर्ग को षकार परे रहते ष्टुत्व नहीं हो॥ 'झला जशोऽन्ते' पदान्त में झलों को जश् हो। यरो० पदान्त यर् को अनुनासिक परे रहते अनुनासिक हो विकल्प करके।

1 एतद् मुरारि अत्रदकारस्य नकारे एतन्मुरारि। शंका—चत्वारि मुखानि यस्य स चतुर्मुखः। यहां 'प्रत्यय लोपे प्रत्यय लक्षणम्' से अन्त वर्तिनी विभक्ति मानकर 'राजपुरुष' के समान पूर्व पद की पद संज्ञा होने पर "यरो नुनासिके ऽनुनासिको वा" इस सूत्र से रकारको अनुनासिक, यमङणन पाये तब कौन हो (स्थानेन्तरतम) अनेक वर्णों की प्राप्ति रहते सदृशतम आदेश हो तो रेफ मूर्धा स्थानिक और अर्ध मात्रिक है इसके स्थान में कौन होगा जो मूर्द्धा स्थानिक और अर्द्ध मात्रिक होगा सो ही आदेश होगा, क्योंकि 'स्थानेऽन्तरतम', इस सूत्रमें जब प्रथमान्त पाठ है तब आदेश तो प्रधान है और स्थानी अप्रधान है इस वास्ते स्थानी जो रेफ है यह आदेश जो अनुनासिक है उन्हीं में जाकर अपने सदृश वर्ण की खोज करेगा, तो र का सदृश अनुनासिकों में कौन है, णकार इस वास्ते णकार होना चाहिये।

क्यों कि णकार मूर्धा स्थानिक है। और अर्ध मात्रिक है इस वास्ते 'चतुण् मुख, होना चाहिये चतुर्मुखः कैसा ? उत्तर- 'स्थाने ऽन्तरतम उरण् रपर', इस प्रकार का संहिता पाठ है तब 'स्थानेऽन्तरतम, इस सूत्र में दो प्रकार से छेद कर सकते हैं, 'स्थाने ऽन्तरतमे उरण् रपर', यह सप्तम्यन्त छेद करके 'एचोयवा यः',से ए का अय् और'लोप.शाकल्यस्य,से लोप करके'स्थानेऽतरन्तम उर ण् र् परः, द्वितीय प्रथमान्त भी मान सकते हैं 'स्थाने ऽन्तरतम उरण् रपर, यहा भी 'ससजुषोरु, से सुके सकार का रु आदेश करके भोभगो० इससे रु का यकार और 'लोपः शाकल्यस्य,से लोप 'स्थाने ऽन्तरम उरणरपर, बन सकता है अब यहा प्रथमान्त पाठमें तो पूर्व कथित दोष आता है इस वास्ते सप्तम्यन्त पाठ मानेगे तो क्या अर्थ होगा कि आदेशों का अन्तरतम अर्थात् सदृश स्थानी होने पर आदेश होते हैं यह अर्थ करने पर आदेश तो 'अप्रधान है,, और स्थानी प्रधान है अर्थात् आदेश स्थानियोंमें आकर खोज करेगा कि मैं किस स्थानी के स्थान में हो जाऊ तब चतुर्मुख यहा पर (यरो -नुनासिके नुनासिको वा) से रेफ को अनुनासिक प्राप्त रहा-क्योंकि पदान्त पर कौन है रेफ-उससे अनुनासिक परे कौन है मकार-तो रेफ को अनुनासिक होना चाहिये अनुनासिक हैं ञमङणन-यह पाच इनमें से कौन हो तब सूत्र लगा 'स्थानेऽन्तरतम ,—आदेशों का अन्तरतम स्थानी रहते आदेश हो आदेश कौन ञमङणन इनों का अत्यन्त स्थानी कौन है टठडढण-क्योंकि ञमङणन यह सब आकर परों में खोज करेगें -कि भाई हमको अत्यन्त सदृश बतादो तब तो मूर्धास्थानिक और स्पष्ट प्रयत्न वाले वर्ण को 'स्थाने ऽन्तरतम, बतावेगा-ऐसे स्थान प्रयत्न वाले

टठडढण ही हैं–तो टठडढण के स्थान मे ही ण हो सकता है—रेफ के स्थान मे नहीं। क्योंकि यह घटक रेफ मूर्धा स्थान वाला तो है परन्तु स्पष्ट प्रयत्न वाला नहीं है–इस वास्ते ञमङणन यह रेफ के स्थान में नहीं होंगे किन्तु टठडढण इनके स्थान में ही होंगे इसी वास्ते मूलकार समाधान करता है कि 'स्थान प्रयत्नाभ्यामिति०,स्थान और प्रयत्न से सादृश्य जो स्पर्श संज्ञक टठडढात्मक वर्ण हैं। पण्णाम् इत्यादि उनों में चरितार्थ जो यह अनुनासिक विधि है सो रेफ मे नहीं प्रवृत्त होगी–इस वास्ते चतुर्मुख में दोष नहीं है शंका–सप्तम्यन्त पाठ मानोगे तो–सुध्युपास्य' यह प्रयोग नहीं बनेगा-क्योंकि 'इकोयणचि,यह सूत्र-इक् के स्थानमें यण् करता है-तब तो ईकार के स्थान मे चार यण् प्राप्त रहेंगे–तो 'स्थानेऽन्तरतमे, यह सप्तम्यन्त पाठ वाला सूत्र कहेगा कि आदेशों के अन्तरतम स्थानी रहते आदेश हो तब यह यण् इकों में खोज करेंगे कि हमारे सादृश्य कौन है–जिसके स्थान पर हम बैठें-यकार अर्धमात्रिक और तालुस्थान वाला है इस वास्ते य सथानी जो इक् है-उनो मे अर्ध मात्रिक और तालु स्थान वाले वर्ण को खोजेगा–ऐसा इको में कौन है–किंचित् सादृश्य लेकर ह्रस्व इकार तो ह्रस्व इकार के स्थान मे यण् होगा, दध्यत्रेत्यादि में। दीर्घ ई के स्थान में नहीं होगा तो सुध्युपास्य में दोष आवेगा–क्योंकि यहा दीर्घ ईकार है ह्रस्व नहीं है। इस वास्ते भाष्यकार ने सप्तम्यन्त पाठ का खण्डन कर दिया-तो चतुर्मुख में फिर भी पूर्व वत् दोष आवेगा ॥ उत्तर— 'अनुस्वारस्य ययिपर सवर्ण, इस सूत्र में पर को लुप्तषष्ठी, पृथक् पद मानकर,सवर्ण पदकी अनुवृत्ति 'यरो नुनासिकेनुनासिकोवा,इस सूत्रमें करेंगे-तो यह अर्थ होगा कि-सवर्ण अनुनासिक हो-तबतो 'चतुर्मुख,में दोष ही नहीं क्योंकि 'रेफोष्मणां सवर्णा नसन्ति,रेफ और

ऊष्माणों का कोई सादृश्य ही नहीं होता है इस वास्ते चतुर्मुख' मे दोष नहीं है क्योंकि रेफ को कोई सवर्ण ही नहीं मिलेगा॥ 'प्रत्यये भाषाया मिति०,पदान्त यर् को अनुनासिक प्रत्यय परे रहते नित्य अनुनासिक हो। शङ्का। रघुवश काव्य मे कालिदास ने 'मदो दुमा ककुद्मन्त , ऐसा पढा है सो यह प्रयोग ठीक नही क्यों कि यहा ककुद् शब्दसे मतुप् प्रत्यय का मकार अनुनासिक परे होने से 'प्रत्यये भाषाया नित्यम् , इस वार्तिक से दकारको नकारहोकर'ककु न्मन्त , ऐसा होना चाहिये, इस वास्ते कहते हैं 'कथ तर्हि इति०,। उत्तर 'यवादि गण दकारोनिपातनात् , यवादि गण में दकार निपातन से किया है अर्थात् दकार का नकार नहीं किया निपातन है। किन्तु ककुद् ऐसा ही पढा है इस वास्ते द,को,न,नहीं हुआ। शङ्का। यवादि गण में तो दकार का नकार हो ही नहीं सकता है क्योंकि वहा तो केवल ककुद् शब्द पढा है ककुद् मन्त नहीं लिखा है इस वास्ते अनुनासिक प्रत्यय परे नहीं होने से द-का-न हो नहीं सकता फिर आपका कथन ठीक नहीं। उत्तर–यदि मतुप् करने पर दकार को नकार करना इष्ट था तो गण में ककुन् ही पढ देते फिर गण मे दकारान्त क्यों पढा इस से जानते हो कि मतुप् होने पर दकार का नकार नहीं होता है। शङ्का। यदि गण में ककुन् पढते तो यवादि गण में पाठ करना ही व्यर्थ हो जाता क्योंकि यवादि गण में पाठ इस वास्ते पढा है कि मय सूत्र सेमतुप् के मकार को नकार नहीं हो यदि ककुन् पढोगे तो यह झयन्त ही नहीं रहेगा पुन यवादि गण में पाठ ही व्यर्थ है। उत्तर–हम ककुन् ऐसा नकारान्त पाठ नहीं करेंगे किन्तु ककुद् मन्त ऐसा प्रकृति प्रत्यय विशिष्ट पाठ करेंगे यहा पर जो ककुद्मन्त गण में पाठ किया है। तत्सामर्थ्य से दकार का नकार

नहीं होगा। शङ्का—यदि दकार का—नकार हो जाता तो क्या पढते—ककुन्मन्त ऐसा पढते—तब भी यवादि गण में पाठ करना व्यर्थ ही हो जाता है क्योंकि मयन्त नहीं रहता तो फिर अय. सूत्र की प्राप्ति ही नहीं। पुन: यवादि गण में पाठ क्यों किया व्यर्थ ही हो जाता। इस वास्ते नकारान्त पढ देते यह कथन ठीक नहीं। फिर कैसे लिखा 'यवादि-गणे दकारो निपातनादिति,—यह कथन ठीक नहीं है। किन्तु यह समाधान करना चाहिये कि—'तसौमत्वर्थे, इसमें तकार के पूर्व दकार।का प्रश्लेष करेंगे और संहिता पाठ में 'यचिभ तसौमत्वर्थे, ऐसा है तो दकार का खरिच,करके तकार कर देंगे—तब तो यह अर्थ होगा दान्त तान्त और सान्त भसञ्ज्ञक हो मत्वर्थीय प्रत्यय परे रहते—तो ककुद् मन्त में भी भसञ्ज्ञा हो जायगी पदके अन्त का दकार नहीं हैं किन्तु भसञ्ज्ञा के अन्त का है इस वास्ते दकारका नकार नहीं हुआ। शङ्का-तसौ यह द्विवचन कैसे बहुवचन होना चाहिये। उ०। तस का समाहार द्वन्द्वकरके फिर दकार का इतरेतर योग द्वन्द्व कर ,देने से द्विवचन आगया ॥'तोलि, तवर्ग को लकार परे रहते पर सवर्ण हो विद्वान् लिखति अत्र नकारो ऽनुनासिक स्तस्य स्थाने लकारोपि अनुनासिक एव। 'उद् स्थास्तम्भो: पूर्व स्येति०।, इस सूत्र में उद् दिशा वाचक शब्द के योग में पञ्चमी दिशा वाचक शब्द का ऊपर से अध्याहार करना चाहिये, तो दिशा वाचक दो प्रकार के शब्द है, एक पूर्व और द्वितीय पर तब इस सूत्र में दोनों का अध्याहार पाया तो क्या अर्थ होगा उद. से पूर्व जो स्थातम्भ-धातु उसको पूर्व वर्ण हो अथवा उद् से परे जो स्थास्तम्भ-धातु उसको पूर्व सवर्ण हो। यह दो अर्थ प्राप्त रहे इन दोनों अर्थो में आपत्ति आई यदि पूर्व अर्थ करें तो वाक् स्था उद् भवति यहांभी सूत्र लग जायगा यदि उद्से परेश्च

करें तो उद् अस्थात् यहाँ अट् के व्यवधान में भी सूत्र लग जायगा इस वास्ते यह दो आपत्ति आती हैं। इस लिये 'उद स्था०, इस सूत्र में परिभाषा सूत्र लगा 'तस्मादित्यु०, दिग्योग लक्षण पंचम्यन्त निर्देश करके विधीयमान जो कार्य्य वह अन्यवर्णों के व्यवधान रहित पर को हो–दिग्योग लक्षण पंचमी कौन (उद) इससे क्रियमाण कार्य क्या है पर सवर्ण। वह व्यवधान रहित को हो–और पर को हो पूर्व को और व्यवधान वाले को नहीं हो'। यह दो नियम उद स्था इस सूत्र में इस परिभाषा सूत्र ने किये–इस वास्ते "उद स्थास्तम्भो पूर्वस्य" का यह अर्थ हुआ कि उद् से अन्यवहित परे जो निर्दिश्य मान-स्था स्तम्भ–धातु तिनों को पूर्व सवर्ण हो–ऐसा अर्थ करने पर अट् के व्यवधानमें तथा उद् से पूर्व स्था को परसवर्ण नहीं हो सकता है। और उद्–स्थानम यहा पूर्व सवर्ण पाया तो किसको हो तब 'अलोऽन्त्यस्य, करके अन्त्य जो आकार है उसको पाया। तब अलोऽन्त्यस्य का बाधक सूत्र लगा "आदे परस्य" पर शब्द का नाम लेकर पर को विधान किया जो कार्य वह आदि को हो। आदि कौन सकार इस वास्ते सकार को पाया।' अब पूर्व जो दकार है उसके सवर्ण पाच हैं–तथदधन इनमें से कौन हो इस वास्ते कहते हैं। 'अघोषस्येति०, यहा अघोष और महा प्राण प्रयत्न वाले स को तादृश याने वैसा ही थकार होता है इस वास्ते सकार को थकार हो गया–उद् थ् थानम्–तस्य–थकारस्य "झरोझरि" इत्यनेन पाक्षिके लोपे "खरिचे ति" दकारस्य तकारे–उत्थानम्। यत्र लोपो न भवति–तत्र–उद्–थ् थानम्–अत्रापि "खरिच" इत्यनेन दकारस्य तकारे उत्थ्थानम्॥ शंका–यहा खरिच करके थकार को तकार क्यों नहीं होता।

इस वास्ते उत्तर करते हैं 'लोपा ऽभाव पक्षे इति०, लोप के अभाव पक्षे थकार का ही श्रवण होता है खरिच करके थकार को 'चर्त्व' तकार नहीं होता है क्यों कि चर्त्व के प्रति अर्थात् खरिच की दृष्टि में 'उद':स्था स्तम्भोः, इस सूत्र विहित थकार को असिद्ध होने से। कोई यह शंका करते हैं कि उद्स्थानम् यहां 'झलो झलि, करके सलोप हो कर भी रूप बन जायगा फिर 'उद: स्थास्तम्भो०,' यह सूत्र क्यों किया। उत्तर। "झलोझलि: प्रत्ययके सकार का लोप करता है "झयो हो" झय् से परे हकार का पूर्व सवर्ण हो विकल्प करके वाक् हरि झला जशान्ते इत्यनेन ककारस्य गकारे वाग हरिः झयोहोऽन्य तरस्यामित्यनेन हकारस्य पूर्व सवर्णे घकारे वाग्घरिः। शंका-हकार का घकार ही क्यों हुआ पूर्व तो गकार है उसके सवर्ण से कखगघङ यह पांच वर्ण हैं इस वास्ते कहते हैं-'घोषवतो नादवत इति, घोष नाद और संवृत महाप्राण प्रयत्न वाले हकार को तादृश याने वैसा ही वर्ग का चतुर्थ घ होता है। "शश्छोटि०" पदान्त झय् से परे शकार का छकार हो अट् परे रहते विकल्प करके। तद् शिव यहां दस्यश्चुत्वेन जकारे कृते-दकार को स्तो श्चुनाश्चु करके जकार किया फिर खरिच-खर् परे रहते झलों को चर् हो-इस करके जकार का चकार हो गया-फिर शश्छोटि करके श का छ होकर रूप बना यह सूत्र क्रम बोधन किया-क्योंकि 'पूर्वत्रासिद्धम्, करके यह व्यवस्था होती है। तद् श्लोकेन यहां अट् परे नहीं; क्योंकि अटों में लकार नहीं है इस वास्ते वार्तिक कहते हैं-छत्वममीति० पदान्त झय् से परे श का छ हो विकल्प करके अम् परे रहते।

शंका—छत्वममीति वाच्यम्-इसमें अमि ग्रहण क्यों किया छत्वमिनि वाच्यम् ऐसा वार्तिक करनेपर भी उक्त लक्ष्य बन जायगा

उत्तर-जहाँ अम् परे नहीं होगा वहां भी लग जायगा जैसे प्राक् श्च्योतति–मोनुस्वार इस सूत्र में 'हलि-सर्वेषाम्' इससे हलि की अनुवृत्ति करना, और पदस्य का अधिकार है तो यह अर्थ हुआ कि मान्त पद को अनुस्वार हो हल् परे रहते। शंका—मोनुस्वार इस सूत्र में पदस्य का अधिकार क्यों किया मकार को अनुस्वारहो, हल् परे रहते ऐसा अर्थ करने पर भी हरिंवन्दे इत्यादि सिद्ध हो जायगे। उत्तर-पदस्यति किं गम्यते–पदस्य नहीं करोगे तो गम्यते यहां अपदान्त मकार को अनुस्वार होकर गंयते रूप बन जायगा और जब पदान्त कहते तब सूत्र लगता नहीं क्योंकि पद के अन्त में मकार नहीं है किन्तु मध्य में है पद तो गम्यते यह समुदाय है इसके अन्त में मकार है–इस वास्ते पदस्य कहना। शंका–यहां तो दोष नहीं है क्योंकि यदि 'पदान्त, और 'अपदान्त में, यह अनुस्वार कर देवे तो "नश्चापदान्तस्यझलि,, यह सूत्र ही व्यर्थ हो जाय औरव्यर्थ होकर नियम करेगा 'अपदान्तस्यानुस्वार स्चेत्तर्हि झल्येव' अपदान्त मकार को अनुस्वार होय तो झल् परे रहते ही हो अन्यत्र नहीं हो तब तो गम्यते में दोष ही नहीं फिर पदस्य क्यों कहा। उत्तर–नश्च शितुक् इत्यादि उत्तर सूत्रों में अधिकारार्थ यहां किया है अन्य का कुछ फल नहीं है।

नश्चा पदान्तस्येति० अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार हो झल् परे रहते। झलिकिमिति। पूर्व सूत्र से हलि की अनुवृत्ति करने पर भी कार्य चल जायगा फिर झल् ग्रहण क्यो किया। उत्तर-मन्यते यहाँ भी हल् परे है इस वास्ते अनुस्वार हो जायगा इस वास्ते झलि ग्रहण किया। अनुस्वारस्येति० अनुस्वार को पर सवर्ण हो यय् परे रहते। 'ननुकुर्वन्ति इत्या रषाभ्यामित्यनेनणत्व

कुतोनेति शङ्कायामाह कुर्वन्ति इत्यत्रेति० कृञ् धातु से लट् स्थाने झि प्रत्यये तनादिकृञ्भ्य उरिति उ प्रत्यये सार्वधातुकार्धधातुकयोरित्यनेनगुणे अयादेशे करार । कृत्तिरकारस्य-उकारेमोन्तः इत्यनेन अन्ता देशे यणि च कृते कुर्वन्ति इति रूपम् ।

कुर्वन्ति यहां पर प्राप्त जो उक्त णत्व विधायक सूत्र है इसको 'नश्चा पदान्तस्य' की दृष्टि में असिद्ध होने से प्रथम नकार को अनुस्वार करना फिर 'अनुस्वारस्य ययि पर सवर्णः' इस करके पर सवर्ण करना—वह पर सवर्ण विधायक सूत्र, णत्व विधायक की दृष्टि में असिद्ध है अर्थात् णत्व विधायक को अनुस्वार ही दीखता है इस वास्ते णत्व नहीं हुआ। "वा पदान्तस्य" पदान्त अनुस्वार को यय् परे रहते विकल्प करके पर सवर्ण हो। सयन्ता इत्यादिकों में अनुस्वार को पक्ष में अनुनासिक यँ वँ लँ होते हैं मो राजि० क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु परे रहते सम् के म को म ही हो ॥ सम् पूर्व राज् - क्विप् प्रत्यय, सम्राट् ।— 'हेमपरे०' म परो यस्मादिति बहु ब्रीहिः ॥ मकार है परे जिसके ऐसा हकार परे रहते म को म ही हो विकल्प करके पक्ष में अनुस्वार होगा। 'यवलपरे' यवला परो यस्मादिति बहु ब्रीहि । यवल है परे जिसके ऐसा हकार परे रहते म को य व ल हो विकल्प करके। 'यथा सख्य' समाना मनु देशो यथा संख्यं भवति—अर्थात् तुल्य सम्बन्ध विधि यथा क्रम से हो। नःपरे न। न परो यस्मात् असौ तस्मिन् नकार है परे जिसके ऐसा हकार परे रहते म को न ही हो विकल्प करके। ङ्णो कुक् टुक्० यहां ङ्णो इस षष्ठ्यन्त पद को देख कर 'षष्ठीस्थाने योगा' से ङकार णकार के स्थान में कुक् आगम हो यह अर्थ प्राप्त था इस वास्ते इसको बांधकर 'आद्यन्तौ

इस सूत्र ने अन्ताऽवयव-यह अर्थ किया–ङकार, णकार के अन्ताऽवयव को क्रम से कुक् और टुक् आगम हो विकल्प करके शर् परे रहते। कुक् टुकोरिति प्राङ् क् षट्। यहां 'झलांजशोन्ते,-से क् को ग् नहीं होताहै क्योंकि कुक् टुक् विधायक सूत्र 'झलांजशोन्ते, की दृष्टि में असिद्ध है। 'चयो द्वि०, चयों को द्वितीय अक्षर हो पौष्करसादि ऋषि के मत से–कुक् पक्ष में क् प का ख होता है। 'ड सि धुट्,इस सूत्र में ड पचम्यन्त सि सप्तम्यन्तधुट् प्रथमान्त है अब यहाँ पर (ड) इस पचम्यन्त पद को देख कर 'तस्मादित्यु-त्तरस्य, की उपस्थिति होनी चाहिये और (सि) इस सप्तम्यन्त पद को देखकर–'तस्मिन्निति०, इस परिभाषा सूत्र की उपस्थिति होनी चाहिये तो क्या अर्थ होता ड से परे सकार परे रहते धुट् आगम हो ऐसा ऊटपटाग अर्थ होना चाहिये इस वास्ते कहना कि-'तस्मिन्निति, इस सूत्र को बाध कर 'तस्मादित्युत्तरस्य, की उपस्थिति करना और 'सि, सप्तम्यन्त को षष्ठी मान लेना इसी वास्ते कहते हैं-'उभय निर्देशे पचमी निर्देशो बलीयान् ,जहां पचम्यन्त और सप्तम्यन्त उभय निर्देश हों वहां पचम्यन्त निर्देश बलवान् होता है इस वास्ते यह अर्थ करना कि डकार से परे सकार को धुट् आगम हो विकल्प करके। शंका–सस्य षष्ठी ही कर देते इतना बखेड़ा क्यों किया। उत्तर 'सि, कहने में लाघव है इस वास्ते ऐसा किया। षट्त् सन्त इति धुटके धकार को 'खरि च, करके त होगया है। अत्र यहां 'चयो द्वितीया०, करके तकार को थकार नहीं होता है। क्योंकि 'चयो द्वितीया०, यह वार्तिक'त्यादिन्या०, सूत्रके आगे का है अर्थात् त्रैपादिक है और 'खरिच,भी त्रैपादिक है इस वास्ते 'खरिच, जो सूत्र है वह 'चयो द्वितीया, की दृष्टि में असिद्ध है इस वास्ते तकार का थकार नहीं हुआ। इसी वास्ते धुट् के अभाव में

भी टकार का डकार नहीं होता है। शका—'ड सि धुट्' इस सूत्रकी जगह 'ड' सि धुक्, ऐसा न्यास कर देवें गे। और यह अर्थ करेंगे कि ड को धुक् आगम हो सकार परे रहते तब तो ड को पष्ठी मान कर कार्य चल जायगा इतना बखेड़ा क्यों किया। उत्तर—धुक् करने में दोष आता है जब धुट् होता है तब तो सकार को होता है, और धुक् जो होगा वह डकार को होगा तो 'षट्त्सन्त,, यहा, राद्धान्तमे तो—'नपदान्ताट्टोरनाम् ,यह ष्टुत्व का निषेध कर देता है। परन्तु धुक् करने पर निषेध नहीं करेगा क्योंकि धुक् डकार का अवयव होगा तो यहा पदान्त टवर्ग नहीं रहेगा इस वास्ते 'नपदान्ताट्टोरनाम् , निषेध भी नहीं होता इस वास्ते धुट् किया है। 'नश्च,—अत्र पदस्याधिकार। नान्तपद से परे स को धुट् आगम हो विकल्प करके। 'शितुक्० , पूर्व सूत्र से नकार की अनुवृत्ति करना और "अर्थवशाद् विभक्तेर्विपरिणाम " इससे न को षष्ठयन्त कर लेना पदान्त नकार को शकार परे रहते तुक् आगम हो विकल्प करके। शन् शम्भुः 'शितुक्' इति विकल्पेन तुकि सन्‌शम्भु "शश्छोटि" इस करके शकार का छकार। और 'झरोझरि०, से विकल्प करके चकार लोप करके चार रूप बना लेना उन्हीं चार प्रकार के रूपों को दिखाते हैं 'ञ्छौ, ञ च छा, इत्यादि० च का जहा लोप हो गया वहां ञ्छौ—जहा नहीं हुआ वहा ञचछा। जहा छत्व नहीं हुआ वहा ञ च शा जहा तुक् नहीं हुआ वहा ञशौ यह चार रूप होते हैं। 'ङमो ह्रस्वादचि०, यहा ङम् प्रत्याहार है और प्रत्याहार यह सज्ञा है। इस वास्ते सज्ञाया च कृत टित्व सामर्थ्यात् संज्ञिभिः सह सम्बध्यते। सज्ञामें जो टित् किया जाता है उसकी सामर्थ्य से संज्ञा घटक संज्ञियों के साथ सम्बन्ध हो जाता है अर्थात् ङमुट् के टित का प्रत्येक प्रत्याहार घटक वर्णों के साथ

, सम्बन्ध करना चाहिये। ङ्,ट् णुट्, नुट् ऐसे आगम करना। ह्रस्व म परे जो ङम तदन्त जो पद उससे परे अच् को नित्य ङमुट् आगम हो।

हेमपरेवा–और 'मय उञो वो, वा–इन दोनों सूत्रोंके मध्य में 'ङमो ह्रस्वादचि, यह सूत्र पढा है। इन दोनों के बीच में पाठकरण सामर्थ्यात् 'वा, की अनुवृत्ति नहीं होगी। क्योंकि यदि 'वा, की अनुवृत्ति इसमें भी आ जाते तो "मयउञो वो वा,, में 'वा, ग्रहण क्यों करते "हे मपरे वा, सूत्र घटक 'वा,, ग्रहण आगे के सब सूत्रों म चला जाता फिर "मय उञो वो वा,, में वा,, ग्रहण सामर्थ्य से 'वा की अनुवृत्ति आवेगी नहीं। पुन 'ङमो ह्रस्वादचि, इस सूत्र मे नित्य ग्रहण क्यों किया। उत्तर–नित्य ग्रहण स्पष्टार्थ है। अर्थात् तात्पर्य ग्राहकार्थ है अर्थात् कोई यह न समझले कि 'हेमपरेवा, घटक 'वा, ग्रहण आगे के पाच सूत्र मे जाता है वा नहीं। इस वास्ते विस्पष्टार्थ कहा व्यर्थ नहीं कहा। अर्थात् 'ङमो ह्रस्वा दचि, इस पठ सूत्र को छोडकर शेष पाच सूत्रों में 'वा, की अनुवृत्ति है। इस वा ते नित्य ग्रहण है। भाव यह है कि'मय उञो वो वा,में वा ग्रहण करने से और 'ङमो ह्रस्वा दचि, में नित्य ग्रहण न करने से सन्देह हो जाता कि 'हेमपरेवा,वा, वा,ग्रहण आगे के जो पाच सूत्र हैं न परे न ,इत्यादि इन्होंमें जाता 'वा नहीं इस वास्ते नित्य ग्रहण किया। 'सम सुटि०, सम् के म को रु हो सुट् आगम परे रहते। 'अत्रानुनासिकः, इति–यह अधिकार सूत्र है अथवा विधि यदि 'अधिकार माना जावे तो अत्र ग्रहण व्यर्थ ही है–क्योंकि अधिकार मानने से ही रु प्रकरण का लाभ हो जावेगा॥ अधिकार पक्ष में–पर कार्य से पूर्व कार्य की

विशेषता द्योतनार्थ तु शब्द है व्यर्थ नहीं है। विधि पक्ष में तु शब्द व्यर्थ है–अत्र शब्द सार्थक है। तात्पर्य यह है कि रुक को अवश्य व्यर्थ करना चाहिये। इस रु प्रकरण में रु से पूर्व वर्ण को अनुनासिक हो विकल्प करके। अनुनासिकादिति० अनुनासिकात् यह ल्यप् लोप में पञ्चमी है। इसी वास्ते कहते हैं अनुनासिक विहाय इति। अनुनासिक को छोड़ कर रु से पूर्व जो वर्ण उससे परे अनुस्वार का आगम हो। 'विसर्जनीयस्यस', । विसर्ग को सकार आदेश हो खर परे रहते। समस्कर्ता–यहां सम् पूर्वक कृञ् धातु से तृच् प्रत्यय करना–और 'सार्वधातु कार्धधातुकयो', इससे गुण करना–और 'सपरिभ्याम०' इससे सुट् आगम करना अब यहां सूत्र लगा 'सम. सुटि, इस करके म् को रु कर दिया तो सरुस्कर्ता–एक पक्ष में अनुनासिक। और द्वितीय में अनुस्वार आगम सँरुस्कर्ता–सरुस्कर्ता ऐसे दो रूप बना कर। उभयत्र उकार की इत्संज्ञा और लोप–विसर्ग, सँ स्कर्ता–स स्कर्ता ऐसा हुआ। अब यहां 'विसर्जनी यस्यस ,करके सत्व प्राप्त रहा इसको बाधकर "वा शरि" इससे विकल्प करके सत्व प्राप्त रहा– तब इसको बाधकर वार्तिक लगा– सपुकाना सो वक्तव्य। सम् पुम्–कान् सम्बन्धी विसर्ग को सत्व कहना–इससे सत्व होगया तो सँसस्कर्ता ससस्कर्ता यह दो रूप बने। कोई आचार्य भाष्यकार के आशय को लेकर कहते हैं समो वा लोपमेके इति भाष्यम् सम् के म् का लोप होता है विकल्प करके। लोपस्थस्यापि इति लोप को भी रु प्रकरण में स्थित होने के कारण, अनुस्वार और अनुनासिक होने से एक सकार वाले दो रूप बनेंगे। द्विसकार- कन्तू रूपमेव। दो सकार वाला तो कह ही दिया है। शङ्का–लोप पक्ष में द्वित्व करके दो रूप बन जाय–फिर "सम. सुटि" सूत्र क्यों

किया । उत्तर । तत्र 'अनचिचेति०, तत्र माने दो सकार वाले में-" अनचि च " करके सकार को द्वित्व होने से तीन सकार के दो रूप बने इस वास्ते 'सम सुटि, किया है । शङ्का । अनुस्वार तो अच् है ही नहीं-फिर अनुस्वार पक्ष में 'अनचि च, करके द्वित्व कैसे होगा । उत्तर करते हैं कि-' अनुस्वारविसर्ग जिह्वामूलीयोपध्मानीयानामिति , अनुस्वार विसर्ग जिह्वामूलीय उपध्मानीय और यम प्रत्याहार इनों का अकार के ऊपर और शरों में पाठ होने से अनुस्वार भी अच् व-धर्म वाला है । इस वास्ते द्वित्व होगया । अब क्या व्यवस्था हो ई-सो दिखाते हैं-लोप पक्ष में दो रूप बने सँस्कर्ता-सस्कर्ता । सम सुटि, करके जहा रु होगया-वहा विकल्प से द्वित्व होकर-सँस्स्कर्ता-सँस्स्कर्ता । अनुस्वार पक्ष में भी द्वित्व होकर दो बने-संस्स्कर्ता संस्कर्ता-इस प्रकार लोप रुत्व और द्वित्व करने से छ रूप बन गये । अनुनासिकवतामिति० और अनुनासिक पक्ष के जो तीन रूप हैं इनों में 'शर । शर् से परे खय् को द्वित्व हो इस करके क को द्वित्व होकर छ रूप बने-अवशेष जो अनुस्वार वाले तीन बचे हैं उनोंमें 'अनचि च, करके अनुस्वार को द्वित्व कर दिया तो छ रूप बन गये । और इन छ प्रयोग में शर खय् करके ककार को द्वित्व कर दिया इस प्रकार द्वादश प्रयोग बने इस वास्ते कहते हैं-अनुस्वारवतामिति० अनुस्वार वाला में अनुस्वार का और अपि शब्द से ककारस्यापि ककार को भी द्वित्व कर दिया। अब बारह तो अनुस्वार वाले । और छ अनुनासिक वाले । इस प्रकार मिला कर अठारह रूप बने । एषा मिति० इन अठारह प्रयोगों में 'अचो रहाभ्यां द्वे, इस करके तकार को विकल्प करके द्वित्व कर दिया । एक ' घटक अठारह प्रयोग । और दो

वास्ते परत्वात् 'शर्परे विसर्जनीय', करके विसर्ग ही होगा इसी बात को कहते हैं—येननाप्राप्त इति । येननाप्राप्ते० इस न्याय से 'विसर्जनीयस्यस ;' इसका यह अपवाद है। ननु शर्परे०—शर्— परे विसर्जनीय इसका नहीं है। तेन वास' क्षौमम्० इस वास्ते वास' क्षौमम्—यहां पर विसर्ग ही हुआ। कानाम्रेडिते०कान् यह लुप्त पष्ठी है। कान् के नकारको रु हो आम्रेडित संज्ञक परे रहते। कान् कान् यहा तस्यपरमाम्रेडितमित्यनेनद्वितीय कान् शब्दस्य आम्रेडित संज्ञायाम्—कानाम्रेडिते इत्यनेन प्रथम कान् नकारस्य रुत्वे अनुस्वारे अनुनासिके च—पुन रुकारस्येत् संज्ञायाम्—लोपे— विसर्गे स—काँ कान् का कान् इति रूपम्। अब यहा सपु कानाम् इससे सत्व होगया॥ वार्तिक में कान् ग्रहण नहीं करना चाहिये इस बात को कहते हैं—यद्वेति०। अथवा इससे सत्व कर लेना चाहिये—कस्कादिषु च० इण् से उत्तर विसर्ग को षत्व हो और जहां इण् से उत्तर नहीं हो वहां सकार हो—'कुप्वो ≍क≍पौच, का अपवाद है॥ आकृतिगणोयमिति। स्वरूप से जिसमे शब्द जाने जावें उसे आकृति गण कहते हैं॥ संहितायाम्—इत्यधिकृत्य—इसका अधिकार करके। स्वस्मिन् फलशून्यत्वे सति, उत्तरोत्तरैकवाक्य-तया फल निष्पादकत्वम् अधिकारत्वम्। छे च०, ह्रस्व को तुक् आगम हो छ परे रहते संहिता के विषय में। शिव छाया यहा इससे तुक् होकर शिवत् छाया—अब अन्य सूत्रों के क्रम को कहते हैं—'स्तो श्चुनाश्चु', यह सूत्र "झला जशोऽन्ते"की दृष्टि में असिद्ध है इस वास्ते सकार वा दकार हो गया—फिर "खरि च, करके द का त पाया इस वास्ते कहते हैं कि 'खरिच, यह सूत्र 'स्तो श्चुनाश्चु, की दृष्टि में असिद्ध है इस वास्ते

अपि च, करके दीर्घ हो जायगा तो पन्था. बन जायगा फिर थि मथि,० यह सूत्र क्यों किया इस सूत्रारम्भ सामर्थ्य से और त्यय, 'परश्च, इस निर्देश से कल्पना करेंगे " कि प्रथमैक वचने र्वो न भवति, इस वास्ते सु के स्थान पर रु न्यास करना उत्तम । उ०–यशोऽत्र, पयोऽत्र नहीं बनेंगे क्योंकि पयस् शब्द है र प्रत्यय किया 'र्मोनंपुमकान्, से रु का लोप किया पयस् अत्र ऐसा हुआ अत्र यहाँ 'ससजुषो, करके सकार का रुत्व किया पय रु अत्र ऐसा हुआ। अत्र यहा पर 'अतो रो र, यह सूत्र नहीं लगेगा क्योंकि इस सूत्र की दृष्टि में रुत्व विधायक सूत्र असिद्ध है। अत उत्व नहीं होगा और जब सिद्धान्त में सु पढते तो सब जगह 'ससजुषा, से हुआ रु मिलता है वह 'अतोरोरप्लु० की दृष्टि में असिद्ध है तो कही मिले होगा नहीं फिर 'अतोरोर०, सूत्र हुआ व्यर्थ व्यर्थ हो कर नियम कर देता है कि 'उत्वम्प्रति रुत्व न सिद्ध मिति, उत्व के प्रति रुत्व असिद्ध नहीं होता है रुत्व को उत्व विधान सामर्थ्य से अब सु की जगह रु विधान करने से यह बात नहीं कह सकते क्योंकि उत्व विधान शिवोऽन्यं में चरितार्थ है क्योंकि यहा पर शिव शब्द से 'वौजस्मौट्, से रु प्रत्यय किया है 'ससजुषो, से नहीं किया है अत यह असिद्ध नहीं है तो 'अतो रोर,० यह सूत्र चरितार्थ हो गया व्यर्थ नहीं है अत 'उत्व प्रति रुत्व नासिद्धम्० यह नियम भी नहीं लगेगा इस वास्ते यशोऽत्र पयोऽत्र रूप नहीं बनेंगे अत 'स्वौजस०, की जगह 'वौजस्० यह न्यास करना ठीक नहीं है। श०–आप का यह कथन ठीक नहीं क्योंकि यहा पर तो 'अतोरोर,० इस सूत्र में अप्लुतात् ग्रहण से यह कल्पना करना कि 'उत्व प्रति रुत्व,० । अप्लुत ग्रहण कैसे है तो कहना कि यदि सुस्रोतस् अत्र

मे। प्लुत किया और स का 'ससजुषो०, से रुत्व किया अब यहा रुत्व को असिद्ध होने से 'अतो रो र०, नहीं नगेगा फिर अप्लुतात् यह ग्रहण क्यों किया।

यही व्यर्थ होकर नियम कर देगा कि 'उत्व प्रति०', । फिर यशोऽत्र इत्यादिकों में दोष है ही नहीं अत 'स्वौजस०, की जगह 'वौजस्०, यह न्यास करना ठीक ही है। उ०-'अतोरोर०, इस सूत्र मे अप्लुतात् ग्रहण व्यर्थ नहीं है क्योंकि देवदत्त ग्राम गतवान किम् यहा पर चरितार्थ है। क्योंकि देवदत्त शब्द से 'वौजस्, से रु प्रत्यय किया। अब यहां पर 'अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयो इससे तकार वृत्ति अकार को प्लुत किया तो देवदत्त ३ ग्राम गतवान ऐसा बना। यदि इस सूत्र में अप्लुत ग्रहण नहीं करोगे तो यहाँ पर प्लुत अकार से परे रु को उत्व हो जायगा। अत अप्लुतात् ग्रहण व्यर्थ नहीं है। अत 'उत्व प्रति०' यह कल्पना भी नहीं करना इस लिये यशोऽत्र इत्यादिकों में दोष बना ही रहेगा। तो फिर 'स्वौजस' के स्थान में 'वौजस्,न्यास ठीक नहीं। श०-अच्छा हम इस सूत्र मे जो अतो में तपर करण किया है उसे व्यर्थ करके यह कल्पना कर लेंगे कि उत्वम्प्रतिरुत्व नासिद्धम्-इस वास्ते यशोऽत्र पयोत्र भी बन जायगे फिर 'वौजस्०' न्यास भी ठीक है। उ०। नहीं अत् में तपर करण व्यर्थ नहीं है क्योंकि विश्वपा, शब्द से 'वौजस्०' से रु प्रत्यय किया विश्वपा रु ऐसा हुआ अब यहा पर तपर करणके अभावमें रु को उत्व हो जायगा इस वास्ते अत् मेंतपर व्यर्थ नहीं है तो उक्त कल्पना भी नहीं करेगा अत' यशोऽत्र ...ष बना ही रहेगा फिर 'वौजस्मोट्, न्यास भी ठीक नहीं है।

... यशोऽत्र में दोष नहीं है'वौजस ही न्यास ठीक है क्योंकि

पि च, करके दीर्घ हो जायगा तो पन्थाः बन जायगा फिर
थि मथि,० यह सूत्र क्यों किया इस सूत्रारम्भ सामर्थ्य से और
त्यय, 'परश्च, इस निर्देश से कल्पना करेंगे कि प्रथमैक वचने
र्वो न भवति, इस वास्ते सु के स्थान पर रु न्यास करना उत्तम
। उ०—यशोऽत्र, पयोऽत्र नहीं बनेंगे क्योंकि पयस् शब्द है रु
प्रत्यय किया 'स्मोर्नपुसकात्, से रु का लोप किया पयस् अत्र
ऐसा हुआ अत्र यहाँ 'ससजुषो, करके सकार का रुत्व किया पय रु
अत्र ऐसा हुआ। अब यहा पर 'अतो रो र, यह सूत्र नहीं लगेगा
क्योंकि इस सूत्र की दृष्टि में रुत्व विधायक सूत्र असिद्ध है। अत
उत्व नहीं होगा और जब सिद्धान्त में सु पढते तो सब जगह
'ससजुषो, से हुआ रु मिलता है, वह 'अतोरोरप्लु०' की दृष्टि में
असिद्ध है तो कहीं मिले होगा नहीं फिर 'अतो रोर०, सूत्र हुआ
व्यर्थ व्यर्थ हो कर नियम कर देता है कि 'उत्वम्प्रति रुत्व ना
सिद्ध मिति, उत्व के प्रति रुत्व असिद्ध नहीं होता है रुत्व को उत्व
विधान सामर्थ्य से अब सु की जगह रु विधान करने से यह बात
नहीं कह सकते क्योंकि उत्व विधान शिवोऽर्च्य में चरितार्थ है
क्योंकि यहा पर शिव शब्द से 'स्वौजसमौट्, से रु प्रत्यय किया है
'ससजुषो, से नहीं किया है अत यह असिद्ध नहीं है तो 'अतो
रोर,० यह सूत्र चरितार्थ हो गया व्यर्थ नहीं है अत 'उत्व प्रति
रुत्व नासिद्धम्, यह नियम भी नहीं लगेगा इस वास्ते यशोऽत्र
पयोऽत्र रूप नहीं बनेंगे अत 'स्वौजस०, की जगह 'स्वौजस्० यह
न्यास करना ठीक नहीं है। श०—आप का यह कथन ठीक नहीं
क्योंकि यहा पर तो 'अतोरोर,० इस सूत्र में अप्लुतात् ग्रहण
यह कल्पना करना कि 'उत्व प्रति रुत्व,० । अप्लुत ग्रहण व्य
कैसे है तो कहना कि एहि-सुस्रोतस् अत्र स्नाहि-यहापर 'दूराद्ध ते

से। प्लुत किया और स का 'ससजुषो०, से रुत्व किया अब यहा रुत्व को असिद्ध होने से ' अतो रो र०, नहीं लगेगा फिर अप्लुतात् यह ग्रहण क्यों किया।

यही व्यर्थ होकर नियम कर देगा कि ' उत्व प्रति० ,। फिर यशोऽत्र इत्यादिकों मे दोष है ही नहीं अत 'स्वौजस०, की जगह 'वौजस्०, यह न्यास करना ठीक ही है। उ०-'अतोरोर०, इस सूत्र में अप्लुतात् ग्रहण व्यर्थ नहीं है क्योंकि देवदत्त ग्राम गतवान किम् यहा पर प्रश्नार्थ है। क्योंकि देवदत्त शब्द से 'वौंजस्, से क प्रत्यय किया। अब यहां पर 'अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयो इससे तकार वृत्ति अकार को प्लुत किया तो देवदत्त ३ ग्राम गतवान ऐसा बना। यदि इस सूत्र में अप्लुत ग्रहण नहीं करोगे तो यहाँ पर प्लुत अकार से परे रु को उत्व हो जायगा। अत अप्लुतात ग्रहण व्यर्थ नहीं है। अत 'उत्व प्रति०' यह कल्पना भी नहीं करना इस लिये यशोऽत्र इत्यादिकों में दोष बना ही रहेगा। तो फिर 'स्वौजस्' के स्थान में 'वौंजस्,न्यास ठीक नहीं। श०—अच्छा हम इस सूत्र में जो अतो में तपर करण किया है उसे व्यर्थ करके यह कल्पना कर लेंगे कि उत्वम्प्रतिरुत्व नासिद्धम्-इस वास्ते यशोऽत्र पयोत्र भी बन जायगे फिर 'वौंजस्०' न्यास भी ठीक है। उ०। नहीं अत् में तपर करण व्यर्थ नहीं है क्योंकि विश्वपा शब्द से 'वौंजस्०' से रु प्रत्यय किया विश्वपा रु ऐसा हुआ अब यहां पर तपर करणके अभावमें रु को उत्व हो जायगा इस वास्ते अत् मेंतपर करण व्यर्थ नहीं है तो उक्त कल्पना भी नहीं करेगा अत' यशोऽत्र में दोष बना ही रहेगा फिर 'वौंजस्मौट्, न्यास भी ठीक नहीं है। ऊ०'पुनरपि यशोऽत्र,में दोष नहीं है'वौंजस्,ही न्यास ठीक है क्योंकि

उत्व के प्रति रुत्व 'असिद्ध' हो तो 'अहन्' सूत्र क्यों किया यह सूत्र अहन् + भ्याम् यहापर नकार को रु करता है फिर रुको उत्व होकर अहोभ्याम् बनता है अब वह नहीं बनेगा क्यों 'अहन्' सूत्र करके जो नकार को रु होता है वह रुत्व विधायक की दृष्टि में असिद्ध है। तो रु का उत्व नहीं होगा तो रूप नहीं बनेगा अहर्भ्याम् बनेगा। यदि ऐसा ही करना था तो 'रोऽसुपि' सूत्रमें असुपि मत करो 'र', ऐसा सूत्र करेंगे और अहन् के नकार को र् हो ऐसा अर्थ करेंगे तब तो इसी से अहर्भ्याम् बन जायगा। पुन 'अहन्' सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि उत्व प्रति रुत्व नासिद्धम्। ऐसा करने पर यशोऽत्र इत्यादि मे दोष नहीं होगा फिर 'वौजस्' इत्यादि न्यास करना ठीक नहीं है। उत्तर—अहन् यह सूत्र व्यर्थ नहीं है। क्योंकि दीर्घोहा निदाघ यहा चरितार्थ है। दीर्घोहन् शब्द म रु प्रत्यय किया रु का 'हल्ङ्याब्भ्यो०' से लोप होकर दीर्घोहन् ऐसा हुआ अब यहा पर 'अहन्' सूत्र से नकार को रु किया और रुत्वस्यासिद्ध त्वात् सर्वनामस्थाने से दीर्घ किया और भो भगो अघो, से रु को यत्व किया 'हलि सर्वेषा' से लोप किया तब दीर्घोहा निदाघ यह रूप बना अब यहाँ 'रोऽसुपि' में 'असुपि ग्रहण न कर के 'र', इतना ही सूत्र करके र करोगे तो रकार का यकार नहीं होगा इस वास्ते अहन् सूत्र करना चाहिये। किया तो 'उत्व प्रति रुत्वं नासिद्ध' यह ज्ञापन नहीं करेगा तो यशोऽत्र इत्यादिकों में दोष बना ही रहेगा। इस वास्ते 'वौजस्मौट' न्यास करना ठीक नहीं शं०। नहीं न्यास करना ठीक है क्योंकि यशोऽत्र में तो दोष नहीं है क्योंकि यदि यह कहोगे कि 'रोऽसुपि' सूत्र क्यों किया अहन् + अह यहां पर 'अहन्' सूत्र से रुत्व करके भी अहरहः प्रयोग बन जायगा। 'यदि कहो कि रुत्व करने पर उत्व हो जायगा सो तो होगा नहीं क्योंकि

अहन् सूत्र करके जो रुत्व होता है वह के उत्व प्रति असिद्ध है। पुन 'रोऽसुपि, सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापन करेगा कि 'उत्वप्रति० अ०। रोऽसुपि सूत्र व्यर्थ नहीं है 'अहन् भाति यहा पर नकार को रकार होकर अहर्भाति वने इस वास्ते चरितार्थ है व्यर्थ नहीं यदि 'रोऽसुपि, न करोगे और अहन् से रुत्व करोगे तो रु का यकार होकर और यकार का लोप होकर अहभाति रूप वनेगा इस वास्ते रोऽसुपि व्यर्थ नहीं है। अत 'उत्व प्रति,' यह कल्पना भी नहीं करेगा तो यशोऽत्र में दोष पूर्ववत् बना ही रहेगा इस वास्ते 'वोज-स्तौद्, न्यास ठीक नहीं है। श०। अच्छा हम यह कहेंगे कि 'रूप-रात्रि, यह वार्तिक क्यों किया क्योंकि अहो रूपम् इत्यादिकों में 'रोऽसुपि से रकार होकर भी वैसा ही रूप वनेगा और 'रूप-रात्रि, ० से रकार करने पर भी वैसा ही बने। रु करने पर भी उत्व नहीं होगा क्योंकि उत्व के प्रति रुत्व असिद्ध है। इस वास्ते वार्तिक व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'उत्व प्रति,० फिर न्यास करना ठीक ही है। उत्तर 'रूप रात्रि,० इत्यादि वार्तिक व्यर्थ हो कर विशेष नियम करेंगे क्योंकि 'ज्ञापकस्य विशेषापेक्षत्वात्। क्या नियम करेंगे कि अहन् शब्द को रुत्व करने पर उत्व की दृष्टि में रुत्व असिद्ध नहीं होता है। तब तो वार्तिक चरितार्थ है और यशोऽत्रमें दोष है क्योंकि वहा कोई नियम करने वाला है नहीं इस वास्ते न्यास करना भी ठीक नहीं है इस वास्ते कहते हैं कि 'स्वौ-जसमौडिति० सु प्रत्यये शिव रु अर्च्य इति स्थिते ।।ससजुषो,०। पदान्त सकार को और सजुष् को रु हो। सजुष् शब्द का भी पदान्त सकार होना चाहिये अन्यथा सजुषो में भी रु हो जाता। जहां जहां पदान्त सकार मिलेगा वहा २ सर्वत्र 'झलां जशोऽन्ते,' से रकार प्राप्त रहेगा और सजुष् में षकार का डकार प्राप्त रहेगा

तो सूत्र ही व्यर्थ हो जायगा इस वास्ते कहते हैं जश्त्वाऽपवाद इति यह जश्त्व का अपवाद है। श० 'झलाँ जशोऽन्ते, यह त्रैपादिक है और 'ससजुषो, यह भी त्रैपादिक है तो 'झलाँ जशोऽन्ते, की दृष्टि मे 'ससजुषो, यह सूत्र असिद्ध हो जायगा फिर अपवाद कैसा। उ०—यम्प्रति यस्यापवादत्व तम्प्रति तस्यनासिद्धत्वम जो जिसके प्रति अपवाद होता है वह उसके प्रति असिद्ध नहीं होता है इस वास्ते असिद्ध नहीं हुआ। अपवाद दो प्रकार से होता है एक 'वाध्य सामान्यचिन्ता पक्ष, मेरे विपय में जो २ सूत्र पावें वे सब वाध लिये जाते हैं और दूसरा 'वाध्य विशेष चिन्ता पक्ष, है। अर्थात् एक सूत्र को बाध कर जब चरितार्थ हो जाय तब दूसरे के बाधने मे कोई प्रमाण नहीं रहता है। तो यहां वाध्य विशेष चिन्ता पक्ष है। येन ना प्राप्ते इस न्याय से 'ससजुपो, यह 'झलाँ जशों,० का बाधक है 'सयोगान्तस्य, का नहीं यदि इसका भी बाधक हो जाता तो श्रेयान् नहीं बनेगा। यहा श्रेयस् शब्द से नुम् और दीर्घ हो कर श्रेयान्स् ऐसा है यदि 'सयोगान्तस्य०' का भी बाधक हो जाता तो यहा सकार का लोप नहीं होता इस वास्ते वाध्यविशेषचिन्तापक्ष, मूलक इसको अपवाद कहना। वाध्यसामान्य चिन्ता पक्ष मूलक नहीं कहना।

"अतोरोरप्लु०" अप्लुत अकार से परे रु को उ हो अप्लुत अकार परे रहते। श०। उत्व की दृष्टि मे यत्व विधायक जो 'भो, भगो' सूत्र है यह असिद्ध होने से प्रथम रु को उकार कर भी लिया तब भी स्थानिवद्भाव से उकार में रुत्व बुद्धि करके, 'भोभगो' से यकार होना चाहिये। उ०भोभगो अघो०इति प्राप्त यत्वस्यापवाद।

'भोभगो,' करके, प्राप्त जो यत्व है उसका, अपवाद है ।।'यह अपवाद सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तत्र कौण्डिन्यन्यायेन बाधकः । सब ब्राह्मणों को दही देना चाहिये परन्तु कौण्डिन्य ऋषि को छाछ देनी चाहिये । जिस प्रकार यहा तक्र दान ने दही दान सब का बाधा किया इसी प्रकार उत्वभी यत्व-का बाधक है । क्योंकि तद्प्राप्ति योगेऽचरितार्थ्ये सति-कृते-च तस्मिन् चारितार्थ्यम्, तत्पद से लेना भो भगो० इसके अप्राप्ति योग्य स्थल- में, उत्व विधायक अचरितार्थ है । कृते च तस्मिन् अर्थात् उत्व के करने पर, यत्व चरितार्थ है इस वास्ते उत्व ने यत्व का बाधा किया । इसी वास्ते यत्वस्यापवाद यह लिखा है । श० । 'अतोरोरप्लु०, यह रूपाद् सप्ताध्याय पठित सूत्र है और 'ससजुषो, रुः यह त्रैपादिक है इस वास्ते उत्व विधायक की दृष्टि में रुत्व विधायक असिद्ध होने से उत्व नहीं होना चाहिये । इस वास्ते कहते हैं- उत्व प्रति०रुत्व अ शेते रुत्व असिद्ध नहीं होता है रु का नाम लेकर उत्व विधान सामर्थ्य से—अर्थात् 'अतोरोर०, यह सूत्र रु का नाम लेकर उत्व विधान करता है यदि रु असिद्ध हो जाय तो उत्व किसको करे अतोरो० यह सूत्र ही व्यर्थ हो जाय इस वास्ते असिद्ध" नहीं है। रा० । अच्छा हम त्रिपादिकों में रो-सुपि-के आगे अतो रोर० की की जगह 'पर अत उ रति, ऐसा न्यास करेंगे और अत् से परे र को उ हो अत् परे रहते ऐसा करेंगे तब तो उत्व की दृष्टि में रुत्व असिद्ध नहीं होगा फिर कैसे कहा 'उत्व प्रति० । च० । यदि 'अत् उ रति, ऐसा न्यास करके त्रैपादिकोंमें करोगे तो "आढ्यण" की दृष्टिमें उत्व विधायक असिद्ध हो जायगा तो 'मनोरथ ,में रोरि, करके लोप हो जायगा और "शिवोऽर्च्य,, में गुण नहीं

होगा इस वास्ते यह न्यास करना और त्रैपादिकों में पढ़ना ठीक नहीं है।

'प्रथमयो पूर्व सवर्ण, । यहा प्रथमयो यह एक शेष है इस वास्ते एक प्रथम शब्द से प्रथमा का ग्रहण है और द्वितीय प्रथम शब्दसे द्वितीयाका ग्रहण है इस वास्ते यह अर्थ हुआ अक् से प्रथमा द्वितीय का अच् परे रहते पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश हो। इति प्राप्ते। इससे दीर्घ प्राप्त रहा।

'नादिचि, अवर्ण से इच् परे रहते पूर्व सवर्ण दीर्घ नहीं हो। इससे निषेध होगया इस वास्ते दीर्घ नहीं हुआ। 'आद्गुण, से गुण 'एङ पदान्तादति,' से पूर्व रूप होकर 'शिवोऽर्च्य, यह रूप बना। श०। शिव उ अर्च्य यहा पर 'आद्गुण' से गुण प्राप्त रहा उसका 'नादिचि' ने निषेध किया परन्तु फिर भी गुण नहीं होना चाहिये क्योंकि जिसका अवसर भ्रष्ट हो जाता है वह भ्रष्ट ही रहता है। यहा 'आद्गुण, का अवसर भ्रष्ट होगया इस वास्ते 'आद्गुण, नहीं होना चाहिये। उ०। 'तो सत, इत्यादि निर्देश से भ्रष्टावसर' न्याय नहीं लगता है। इस वास्ते गुण होगया 'शिवोऽर्च्य; वन गया यहां पर कोई कोई यह कहते हैं कि देवदत्त हत हन्तृ न्याय लगनी चाहिये। क्योंकि देवदत्त स्थाना पन्न कौन है गुण उसका हन्ता कौन 'प्रथमयो 'पूर्व', उसका हन्ता नादिचि फिर गुण का होना असम्भव है। उ०। यह न्याय यहा पर नहीं लगता है किन्तु 'आद्गुण' को जिस वक्त हनन करने को 'प्रथमयो; सूत्र तैयार हुआ तब ही 'नादिचि, ने 'प्रथमयो, का हनन कर दिया। इस वास्ते आद्गुण यह हत नहीं हुआ। इस वास्ते गुण होगया। अन् इति तपर किम् इसका

यह भाव है कि 'अतो रो र०' इस सूत्र में अत शब्द में तपर करण क्यों किया 'अरोरप्लुतादप्लुते, ऐसा ही सूत्र करेंगे और अ को लुप्त पञ्चम्यन्त मानेंगे तब तो देव जस् जकार की इत् सञ्ज्ञा लोप 'प्रथमयो,' से दीर्घ देवास् अत्र 'ससजुषो, से रुत्व देवारु अत्र ऐसा हुआ अब यहा भी दीर्घ आकार से परे रु को उत्व होना चाहिये इस वास्ते अत् मे तपर करण किया । जब तपर करण करते हैं तब प्राप्ति नहीं क्योंकि 'तपरस्तत्कालस्य करके ह्रस्व अकार लिया जाता है दीर्घ नहीं । 'अप्लुतेति, यहा अति में तपर करण क्यों किया। उ०। श्वस् + आगन्ता यहा दीर्घ आकार परे रहते भी लग जायगा । इस वास्ते तपर करण किया । श० । अत् से परे रु को उ हो अप्लुत अकार परे रहते ऐसा करने पर भी कार्य चल जायगा फिर अप्लुतादिति किम् उ० । एहि सुश्रोतस् अत्र स्नाहि यहाँ 'दूराद्धूते च, से तकार वृत्ति अकार को प्लुत किया तो एहि सुश्रोत ३स् अत्र स्नाहि ऐसा बना अब न का र किया अब यहा भी अकार से परे रु को उ हो जायगा । इस वास्ते अप्लुतात् ग्रहण करना चाहिये । श० यहा तो दोष नहीं है क्योंकि अत मे तपर करण पढा है 'अत तपरस्तत्का, करके ह्रस्व अकार से परे ही रु को उ होसकता है प्लुत आकार से परे नहीं होगा फिर अप्लुतादिति किम् । उ० । 'अतो रो र०' इस सूत्र करके जो उत्व हुआ है इसकी दृष्टि मे प्लुत विधायक जो 'दूराद्धूते०, है यह असिद्ध है इस वास्ते ह्रस्व अकार से परे होगया तो सुश्रोत ३ स् अत्र स्नाहि में भी उत्व हो जायगा अत अप्लुतात् ग्रहण करना चाहिये। श० । अच्छा । जब उत्व विधायक की दृष्टि मे प्लुत विधायक असिद्ध है तो

होगा फिर अश् ग्रहण क्यों किया । उ०—यद्यपि विसर्ग विधायक की दृष्टि में यत्व विधायक असिद्ध हो कर विसर्ग ही होगा परन्तु विसर्ग को 'स्थानिवदादेशो०, से स्थानिवद्भाव करके यत्व हो जायगा इसी बात को कहते हैं "यद्यपी यत्वस्यासिद्धत्वान् विसर्गो लभ्यते,, यद्यपि यहा यत्व को असिद्धहोने से विसर्ग हो जायगा 'तथापि विसर्गस्य स्थानिवद्भावेन रुत्वाद्यत्वस्यात्, तब भी विसर्ग को स्थानि वद्भाव से रु मान कर यकार हो जायगा । श०—देवाः सन्ति में स्थानिवद्भाव से विसर्ग में रुत्व बुद्धि नहीं कर सकते क्योंकि यह विसर्ग रेफ का हुआ है रु का नहीं इस वास्ते अनल्विधौ निषेध हो जायगा तो रत्व आवेगा ही नहीं फिर अश् ग्रहण क्यों किया । उ०—'नह्ययमल्विधि, यह अल् विधि नहीं है क्योंकि 'रोरिति समुदाय रूपाश्रयणात्, क्योंकि समुदाय रु का नाम लेकर विसर्ग विधान करता है अत अशि ग्रहण करना चाहिये । यह प्राचीनों का समाधान है नवीन तो परिष्कार से देवाः सन्ति में हटा कर छन्दःसु इत्यादि में दोष देते हैं सो विस्तार भय से नहीं लिखा है परिशिष्ट में लिखेंगे । भोस् भगोस् अघोस् यह सकरान्त निपात हैं इन्हो के आगे विभक्ति का लोप होता है अत यह सब पद हैं । 'तेषां रोर्यत्वे कृते, उन्हों के रु को यत्व करने पर 'व्योर्लघु प्रयत्नतरः शाकटायनस्य,' पदान्त में विद्यमान जो वकार यकार इन्हो को लघुच्चारण वकार यकार आदेश [redacted] विकल्प करके अश् परे रहते । लघुच्चारण किसे कहते हैं । यस्योच्चारणे इति० जिसके उच्चारण करने में जिह्वा का अग्र भाग समीप भाग मध्य और मूल भाग शैथिल्यहो जांय उसे लघूच्चारण कहते हैं ।

।ओतो गार्ग्यस्य ' ओकार से परे पदान्त जो अलघु प्रयत्न यकार उसका नित्य लोप हो । श० इस सूत्रमें नित्य कहां से आया क्योंकि यह गार्ग्य के मत मे लोप करेगा इस वास्ते विकल्प होना चाहिये। उ०। यहाँ गार्ग्य ग्रहण पूजार्थ है अर्थात् निःसार्थ है यदि विकल्प करना था तो 'लोपः शाकल्यस्य, से ही लोप कर देते दो रूप बन जाते। भो अच्युत अत्र यकारस्य लोपः। लघु प्रयत्न पक्षे नैव लोप । भोयच्युत इति। पदान्तस्य किम्। तोयम्। यहां अपदान्त यकार का भी लोप हो जायगा अतः पदान्त किया है। जब पदान्त करते हैं तब प्राप्ति नहीं क्योंकि यह मध्य में यकार है। 'उञिचपदे, । अवर्ण है पूर्व में जिसके ऐसे पदान्त यकार वकार का लोप हो उञ् पद परे रहते। सस् उ एकाग्निः यहां सकार का रुत्व और रुत्व का यकार करके लोप करना। श०। 'ऊञिच पदे,' इस सूत्रमें उञ् यह सर्वदा पद ही मिलेगा फिर पदे किम् पद ग्रहण क्यो किया। उ० तन्त्रे न उतम् यहां 'एचोयवा०,से ए को अय् हो कर तन्त्र युतम् ऐसा बना और उतम् यहां वेञ् धातु से क्त प्रत्यय किया और 'वचि स्वपि०,' से वकारको सम्प्रसारण किया 'इग्यणः, से सम्प्रसारण संज्ञा, और 'सम्प्रसारणाच -से पूर्व रूप तब उतम् बना है। अब यदि पद ग्रहण नहीं करेंगे तो उञ् पद नहीं है अतः यकार का लोप होकर तन्त्र उतम् बन जायगा इस वास्ते पद ग्रहण करना। जब करते हैं प्राप्ति नहीं क्योंकि उञ् तो है परन्तु पद नहीं है। पद तो उतम् यह समुदाय है केवल उ नहीं है और चाहिये उञ् पद इस वास्ते दोष आवेगा। श०। यहां दोष नहीं है क्योंकि यह जो उतम् है यह लाक्षणिक है (सूत्रेण कृत लाक्षणिकम्) और 'उञि च पदे, में जो उञ् है वह निपातनसे बताया है यानी प्रति-

पदोक्त है (स्वय सिद्ध प्रतिपदोक्तम्) इस वास्ते 'लक्षण प्रतिपदोक्तयो. प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्, लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त के ग्रहण मे प्रतिपदोक्त का ही ग्रहण होता है इस लिये 'उतम्, तो लाक्षणिक है और सूत्र मे प्रतिपदोक्त है तो उतम् का ग्रहण नहीं होगा इसी वास्ते कहते हैं 'यदि तु प्रतिपदोक्तो निपात०, यदि प्रति पदोक्त उञ् निपात लिया जाय तो दोष नही है, फिर पद ग्रहण क्यों किया। उ० उत्तरार्थम्, उत्तर सूत्र में अनुवृत्ति के वास्ते है। उत्तर सूत्र कौन है जिसमे इसका फल हो उसे लिखते हैं। ङमो ह्रस्वा०, इस सूत्र मे फल है। इसमे 'उञि च०, स पद की अनुवृत्ति करके यह अर्थ करना। ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्त यत्पद तस्मात्परस्याजादे पदस्य ङमुट्। यहा पर अजादे पदस्य यह अर्थ पदे का अधिकार करके किया है। ऐसा अर्थ करने का फल परम दाण्डिनौ यहा पर औ पद न होने से ङमुट् नही हुआ यदि पदस्य का अधिकार नहीं करते तो ङमुट हो जाता। इस वास्ते पद ग्रहण का फल उत्तरार्थ हुआ। शका। वास्तविक मे पद ग्रहण का उत्तर सूत्र मे भी कुछ फल नहीं है क्योंकि 'ङमो ह्रस्वादचि, इस सूत्र मे पदस्य का अधिकार है इस वास्ते यह अर्थ होता है ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्त यत्पद तस्मात्परस्याचो ङमुट्। यह अर्थ करने पर भी परम दाण्डिनौ मे दोष नहीं है। क्योंकि यहा 'उत्तर पदत्वे चापदादि विधौ। पदादि विधि को छोड कर उत्तर पद को जहा पदत्व कार्य करना हो वहाँ प्रत्यय लक्षण नहीं होता है। अत परम दाण्डिनौ मे प्रत्यय लक्षण से दाण्डिन को पदत्व नहीं होगा तो ङमन्त पद से परे अच् का अभाव हो गया इस वास्ते ङमुट् भी नहीं होगा फिर पद का उत्तर सूत्रमे फल भी नहीं है। उ०। यहा 'उत्तर पदत्वे चा०,

यह निषेध नहीं लगता क्योंकि यह निषेध तो मापकुम्भवापेन इत्यादिकों में पदव्यवायेपि करके प्राप्त जो णत्व उसकी व्यावृत्ति के वास्ते है कि उत्तर पद को जहा कार्य हो वहा वहा प्रत्यय लक्षण नहीं हो। इस वास्ते पद ग्रहण उत्तरार्थ ही मानना योग्य है। परम दाण्डिनौ इत्यादिकों में अमुद् व्यावृत्ति के वास्ते है। शं०। पदे का फल तो हलि सर्वेषा यहा है इसका यह अर्थ होता है कि हलादौ पदे परे यकार वकारस्य लोप तेन वृक्षवृभ्याम् इत्यत्र वकारस्य नित्य लोपो न भवेत् किन्तु 'लोप शाकल्य०, विकल्पेन लोपो भवेदिति उ०। हलिसर्वे०, सूत्र में वकार की अनुवृत्ति ही नहीं है अत: 'लोप: शाकल्य०, से ही विकल्प करके लोप होता है। इस वास्ते पदे ग्रहण की अनुवृत्तिका इस सूत्र में फल नहीं है किन्तु 'ङमोह्स्वा०, इस सूत्र में फल है।

'हलि सर्वेषाम्, भो भगो अघो और अवर्ण यह हैं पूर्व में जिसके ऐसे लघु अलघूच्चारण यकार का लोप हो हल् परे रहते सब के मत में। इस सूत्र में वकार की अनुवृत्ति नहीं करना फल का अभव होने से शं०। हलि सर्वेषाम्, इस सूत्र में हलि ग्रहण क्यों किया। उ० हलि ग्रहण नहीं करेंगे तो तो देव शब्द से जस् विभक्ति की जकार की इत्संज्ञा हो गई देव अस् ऐसी स्थिति हुई। फिर 'प्रथमयो पूर्व०, करके पूर्व सवर्ण दीर्घ हो गया है फिर 'ससजुषो०, करके रु हो गया उकार की इत्संज्ञा हो गई 'भो भगो०, करके यकारा देश हो गया देवाय् इह ऐसा बना अब यदि यहाँ पर हलि नही ग्रहण करेंगे तो यकार का लोप हो जायगा। शं०। कहते हैं कि यदि अस् परे रहते भी सूत्र लग जायगा तो 'लोपः शाक०, सूत्र ही व्यर्थ हो जायगा तो अच् परे रहते 'हलि

सर्वे०,' को 'लोपः शाक०,' बाध लेवेगा तो देवायिह में दोष नहीं फिर हल् ग्रहण क्यों किया। कहते हैं नहीं जब 'देवाय्' इह इस अवस्था में सूत्र लगा 'व्योर्लघु प्रय०, तो इस…कर के यकार को लघून्चारण यकार हो गया। अब यह लघून्चारण यकार शाकल्य के मत में होता नहीं शाकटायन के मत में होता है। तो 'लोप शाकल्य०, तो लगेगा नहीं और 'हलि सर्वे०, लग जावेगा तो लघुच्चारण पक्ष में अच् परे रहते भी देवा इह ऐसा रूप हो जायगा इस वास्ते हलि ग्रहण किया जब हल् कहते हैं तब हल् परे नहीं है। अत लोप नहीं हुआ एतदर्थ हल् ग्रहण है। वकार की अनुवृत्ति करनी चाहिये। उ० इस सूत्र में अशि की अनुवृत्ति करके यह अर्थ करलो अश् रूप हल् परे रहते। तब तो वृक्षव् करोति में प्राप्ति ही नहीं है। वृक्षव हसति इत्यादिकों का अनभिधान होने से यहां भी वकार की अनुवृत्ति का फल नहीं है। क्योंकि 'भो भगो अघो०, इन्हों से परे कहीं वकार मिलता नहीं है। श०। अच्छा वृक्ष व् करोति यहां अकार वकार से मिलता है। अत रोऽसुपि, यहा न सुपि असुपि यह नञ् पर्युदास नहीं मानना। यदि पर्युदास मान लेवेंगे तो सुप् भिन्न सुप् सदृश प्रत्यय परे रहते सूत्र लगेगा। अहर्पति इत्यादि, में। और अहर्भाति में नहीं लगेगा इस वास्ते प्रसज्य मानना। अहन् शब्द के नकार को रेफ आदेश हो सुप् परे रहते नहीं हो। शंका करते हैं कि 'रोऽसुपि, इस सूत्र में असुपि ग्रहण क्यों किया। यदि असुपि नहीं करेंगे तो सुप् परे रहते भी लग जायगा अहोभ्याम् इत्यादिकों में। अब तो 'अहन्, करके रुत्व होता है फिर अहन्, को बाध कर रेफ कर देगा। अत असुपि

कहना चाहिये। शं० यदि यह सूत्र सुप् परे रहते भी लग जायगा तो अहन् सूत्र ही व्यर्थ हो जायगा क्योंकि यह सुप् परे रहते और असुप् परे रहते सबजगह लगजायगा इस वास्ते व्यर्थ होकर 'अहन्, सूत्र इसका बाधा करेगा कि सुप् परे रहते नहीं लगता है। इस वास्ते असुप् परे रहते ही लगेगा पुनः असुपि क्यों कहा। उ०। 'अहन्, सूत्र व्यर्थ नहीं है क्योंकि अहोभ्याम् में चरितार्थ है जब कि तुमने 'रो सुपि, को सुप् परे रहते भी लगा लिया तो अहन् भ्याम् इत्यादिकों में भी लग जायगा अर्थात् नकार को रेफादेश करेगा तो अहर्भ्याम् रूप बनेगा। अब यहां 'न लोप प्रातिपदि०, की दृष्टि में 'रोऽसुपि; असिद्ध है तो अह' अहोभ्याम् दोनों जगह रेफ आदेश हो भी जायगा परन्तु रुत्व को असिद्ध होने से न लोप हो जायगा। इस वास्ते 'अहन्, सूत्र की आवृत्ति करके प्रथम सूत्र से न लोप का अभाव करेंगे और दूसरे से रुत्व करेंगे इस वास्ते 'अहन्' सूत्र करना आवश्यक है व्यर्थ नहीं है। इस वास्ते अहन् सूत्र व्यर्थ होकर 'रोऽसुपि' का बाधक होजायगा यह बात नहीं कह सकते तो अहोभ्याम् में दोष आवेगा इस वास्ते असुपि ग्रहण किया।

रूपरात्रिरथ०, । रूप रात्रि रथन्तर परे रहते भी अहन् शब्द के नकार को रुत्व कहना। रोऽसुपि का बाधक है। अहो रात्रि में रात्रि शब्द परे नहीं है इस वास्ते वार्तिक नहीं लगना चाहिये। इस वास्ते कहते हैं 'एकदेश०' । एक देश जिसका विकृत हो वह अन्यवत् नहीं होता है। यहां रात्रि के इकार का लोप होने पर भी रात्रि मान लिया गया इस वास्ते लग गया। 'अहरादीनामिति०' पत्यादि शब्द परे रहते अहरादि के रेफ को

रेफ षड्ना विकल्प करके। अर्थात् विसर्ग के बाध 'कर रेफ कर देता है। पक्ष में विसर्ग और उपध्मानीय हो जाते हैं।

रो रि'। रेफ का लोप हो रेफ परे रहते।

ढ्लोपे पूर्वस्य०'। ढ् में अकार उच्चारणार्थ है। ढ्रश्च रश्च ढ्रौ तौ लोपयति इति ढ्लोपस्तस्मिन ढ्लोपे। ढरेफ का लोप कराने वाले ढ रेफ परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ हो। पुनर् रमते पुनारमते इत्यादि।शा०। इस सूत्रमें दीर्घ पद का उपादान किया है इस वास्ते 'अचश्च' सूत्र से अच् की उपस्थिति होगी तो ढ रेफ का लोप कराने वाले ढ रेफ परे रहते पूर्व अच् को दीर्घ हो ऐसा अर्थ करने पर भी पुनारमते इत्यादि प्रयोग सिद्ध हो जायगे पुन. अण् ग्रहण क्यों किया। उ०। अण् ग्रहण नहीं करेंगे तो और अच् की-उपस्थिति करोगे तो तृहु वृहु हिंसायाम् धातु-से क्त प्रत्यय किया ककार की इत्संज्ञा लोप तृहत् वृहत ऐसा हुआ फिर होढ से दोनों जगह ही हकार का ढकार हुआ और 'झष-स्तथोर्धोध, से तकार का धकार किया 'ष्टुनाष्टु, से ध का ढ-और 'ढो ढे लोप, मे ढ का लोप किया। इट् होता नहीं है क्योंकि यह उदित है।-अत 'स्वरति सूति, से विकल्प करके इट् पाया या 'यस्य विभाषा, मे निषेध हो गया तो तृढ॰ वृढ ऐसे रूप बने। अब-यहा पर अचों में ऋकार आ गया इसवास्ते दीर्घ हो जायगा तो तृढ वृढ ऐसे असगत रूप हो जायगे अत सूत्र में अण् ग्रहण किया। जब अण् करते हैं तब प्राप्ति नहीं क्योंकि अण् पूर्व णकार तक लिया जाता है पूर्व णकार तक लेने में ऋकार नहीं आया है। अत॰ दीर्घ भी नहीं होता है। शा०। ऋच्छा हन पर

णकार तक अण् मान लेवे तब तो यहां दीर्घ होना चाहिये। उ० । यदि पर णकार तक अण् लिया जाता तो सूत्रमें अण् ग्रहण ही क्यों करते क्योंकि पूर्व वत् अच् की उपस्थिति करके ही निर्वाह कर लेते पुन अण् ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि पूर्व णकार तक अण् लेना पर णकार तक अण् नहीं लेना इस वास्ते दीर्घ नहीं हुआ तो वृढ वृढ बने। श० ढ्लोपे पूर्व० इस सूत्र में ढ्लोपे इसको सप्तमी मान कर 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे०, इस परिभाषा की उपस्थिति होने से ढकार रेफ से अव्यवहित पूर्वत्व विशिष्ट अण् को दीर्घ हो यह पूर्वत्व विशिष्ट अर्थ स्वयमेव हो जायगा। फिर सूत्रमें पूर्व ग्रहण क्यों किया। उ०। पूर्व ग्रहणमनुत्तरपदेपि पूर्वमात्रस्य दीर्घार्थम्। यद्यपि परिभाषा से ही पूर्व ग्रहण लब्ध हो जायगा परन्तु पूर्व ग्रहण इस वास्ते है अनुत्तर पदे-पि उत्तर पद परे नहीं है तब भी पूर्व मात्रस्य दीर्घार्थम् पूर्व मात्र को दीर्घ हो। यह भाव हुआ कि पूर्व ग्रहण नहीं करोगे तो इस सूत्र में 'अलुगुत्तरपदे, से उत्तर पदे का अधिकार होजायगा और उत्तर पद यह साकाँक्ष पद है इस वास्ते इस उत्तर पद से पूर्व पद का आक्षेप होगा ता सूत्र का यह अर्थ होगा कि ढकार रेफ का लोप कराने वाले उत्तर पद घटक ढकार रेफ परे रहते पूर्व पद घटक अण् को दीर्घ हो। अर्थात् पूर्व पद घटक अण् हो और उत्तर पद घटक ढ रेफ हों तब ही दीर्घ हों। यदि एक ही पद में अण् और ढ रेफ हों तो दीर्घ नहीं होगा 'पुनारमते, हरीरम्य, शम्भू राजते इत्यादि मे तो पूर्व पद घटक अण् है और उत्तर पद घटक रेफ है इस वास्ते दीर्घ हो गया। परन्तु अजर्घा और अलीढ मे दीर्घ नहीं होगा क्योंकि यहा एक पद घटक अण् और रेफ ढकार

है क्योंकि लिट् धातु से क्त प्रत्यय किया ककार की इत्संज्ञा और लोप लिह् त होढ से हक ढ 'झषस्तथो०, से तकार का धकार ष्टुना ष्टु से धकार का ढकार ढो ढे लोप करके पूर्व ढकार का लोप लिढ अब यहाँ पर जब पूर्व ग्रहण है और पूर्व ग्रहण सामर्थ्य से उत्तर पद का अधिकार नहीं है तब तो दीर्घ होता है लीढ ऐसा बनता है क्योंकि एक पद में अण और ढ लोप हो तब भी दीर्घ होता है अब उत्तर पद का अधिकार करने पर नहीं होगा क्योंकि दोपद जहा होंगे वहा दीर्घ होगा। एक पद में दीर्घ नहीं होगा इसी प्रकार अजर्घा यहा पर भी गृधु अभिकाङ्क्षायाम् धातु से 'धातो रेकाचो, से यङ् प्रत्यय किया और यङोऽचि करके यङ् का लुक् गृध रहा तब सन्यङो० से गृ गृ को द्वित्व किया उरत् करके अभ्यास को अर् किया हलादि शेष करके र् और ध् का लोप कुहोश्चु से झ किया और अभ्यासेचर्च से झका जकार किया और अभ्यास को रुक् आगम जर्गृध्–धातु सज्ञा, और लङ् लकार किया, अट् आगम, अजर्गृध् लङ्। लङ् स्थाने सिप् शप् प्रत्यय, और शप् का लुक्, पुगन्त लघूपधस्य च से गृ में अ को गुण किया, अजर्गर्धसि इतश्च करके इकार का लोप, और हल्ङ्याब्भ्यो से सिप् के सकार का लोप, अजर्गर्ध भष् भाव, अजर्घर्ध झला जशो०, से, अन्त्य धकार का दकार दश्च से दकार का रु किया उकार की इत्संज्ञा अजर्घर्र् हुआ, अब यहा रो रि से पूर्व रकार का लोप, अजर्घर् अब यहा ढ्रलोपे से दीर्घ होकर और रफ का विसर्ग होकर अजर्घाः बनता है, यह भी नहीं बनेगा, क्योंकि एक पद घटक अण् और रेफ हो गये, और चाहिये पृथक् २ अर्थात् पूर्व पद घटक अण् हो और उत्तर पद घटक रेफ

हो तब दीर्घ होगा इस वास्ते पूर्व ग्रहण किया है। जब पूर्व ग्रहण करते हैं तब पूर्व ग्रहण सामर्थ्य से उत्तर पद का अधिकार नहीं होता है। श० । सूत्रारम्भ सामर्थ्य से ही उत्तर पद का अधिकार नहीं होगा क्योंकि पूर्व पद घटक कहीं अण और उत्तर पद घटक ढ रेफ नहीं मिलगे। उ० । यह बात नहीं कह सकते हो क्योंकि सूत्र तो पुनःरमते इत्यादि में चरितार्थ है। श० । रेफ परे रहते तो सूत्र चरितार्थ है परन्तु ढकाराश में कहीं चरितार्थ नहीं है तो ढकाराश में व्यर्थ होकर नियम करेगा कि उत्तर पद का अधिकार नहीं होता है। उ०। ढकाराश में भी सूत्रव्यर्थ नहीं है क्योंकि लिहः ढौकनम् यहा पर षष्ठी समास किया, और विभक्ति का लोप किया, लिह् ढौकनम् ऐसा बना। फिर होढ से हकार का ढकार किया ढो ढे लोप से लोप लि ढौकनम् । अब यहा उत्तर पद परे रहते लकार वृत्ति इकार को दीर्घ होकर लीढौकनम् ऐसा रूप बनता है यहा ढकाराश में भी सूत्र चरितार्थ है फिर ढकाराश में सूत्र व्यर्थ होकर उत्तर पद का अधिकार नही होगा पूर्व ग्रहण क्यों किया यह बात नहीं कह सकते हो। यदि उत्तर पद शब्द को समास के चरमाऽवयव में रूढ मानेंगे और उत्तरश्च तत्पदं उत्तर पदम् ऐसा नही मानेंगे तब तो, पुनारमते इत्यादिकों में भी समास नहीं है तब तो रकाराश में भी सूत्र व्यर्थ होकर नियम करेगा कि उत्तर पद का अधिकार नहीं होता है। फिर पूर्व ग्रहण क्यों किया। उ०। उत्तर पद शब्द को समा सके अन्ताऽवयव में रूढ माने तब भी रकाराश में सूत्र व्यर्थ नहीं है क्योंकि निर्-रक्तम् दुर् रक्तम् यहा पर रो रि सूत्र से र का लोप होकर ढ्रलोपे से दीर्घ होकर नीरक्तम् दूरक्तम् ऐसे रूप बनते हैं यहां सूत्र चरि-

सार्थ है व्यर्थ नहीं है इस वास्ते ढकारांश में सूत्र व्यर्थ होकर यह नियम करे कि उत्तर पद का अधिकार नहीं होता है यह बात नहीं कह सकते किन्तु पूर्व ग्रहण करना चाहिये। श० ।ढकारांशमें सूत्र चरितार्थ नहीं हो सकता है क्योंकि लिढ् ढौकनम् ष्सीरिधति में ढोढे लोप करके लोप पाया और जश्त्व प्राप्त रहा तब जश्त्व की दृष्टि में ढ लोप असिद्ध है। इस वास्ते जश्त्व होकर लिड् ढौकनम् ऐसा ही रूप बनता है तब तो ढकारांश में व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि उत्तर पद का अधिकार नहीं होता है। फिरपूर्व ग्रहण क्यों किया। उ० अत्रय भृगव इत्यादिकों की सिद्धि के लिये उत्तर पद शब्द समास के अन्ताऽवयव में रूढ नहीं किन्तु उत्तर पदशब्द को वृत्ति चरमाऽवयवे रूढ ऐसा करना चाहिये। कृत्तद्धित समासैक सनाद्यन्ता रूपा पञ्च वृत्तय इन पाचोंमें रहती है। इसवास्ते लीढ इत्यादि कृदन्त रूपावृत्ति होने से ढकारांश में भी सूत्र चरितार्थ है व्यर्थ नहीं है इस वास्ते ढकारांश में व्यर्थ होकर उत्तर पद का अधिकार नहीं होता है यह बात नहीं कह सकते किन्तु उत्तर पद का अधिकार हो ही जाता है। इस वास्ते सूत्र में पूर्व ग्रहण किया है। श० यदि कोई यह कहै कि 'ढ्लोपे की दृष्टि में ढ्लोप असिद्ध हैं इस वास्ते सूत्र व्यर्थ होजायगा उ० । सूत्रारम्भ सामर्थ्यात् यहा असिद्धत्व व्यवहार नहीं होता है। मनम् रथ यहा पर 'ससजपो' मे रु किया मनर् रथ तब रोरि मे लोप - और हशिच से उत्व - प्राप्त रहा तो कौन हो इस वास्ते कहते हैं कि। 'विप्रतिषेधे०'। तुल्य बल विरोध को विप्रतिषेध कहते हैं। अर्थात् जहा समान बल वालों का विरोध हो वहा पर कार्य हो। समान बल वाले, कैसे होते हैं 'अन्यत्रान्यत्रलब्धावकाशयोरेकत्र समावेश स्तुल्य बल:

विरोध.। अब यहा 'हशि च' देवो हसति में चरितार्थ है, और रोरि पुनः रमते में और यहा दोनो पाये तो परत्वात् रोरि करके लोप होना चाहिये इति लोपे प्राप्ते। तब पूर्वत्रा सिद्धम् करके 'रोरि को असिद्ध होने से हशि च करके उत्व होगया और गुण होकर मनोरथ. बन गया;

'एतत्तदोरिति०' ककार रहित जो एतत् और तत् शब्द तत्सम्बन्धी सु का लोपहो हल् परे रहते नञ् समासको छोडकर। श० जब एतत् शब्द से अथवा तद् शब्द से अकच् प्रत्यय करेंगे तो शब्दान्तर हो जायगा एतत् तत् शब्द ही नहीं रहेगा तो सु का लोप भी नहीं होगा फिर 'अको किम् अको ग्रहण क्यो किया । उ० यही अको ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि यन्मध्ये पतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते इति, जो जिसके मध्य में पतित होता है उसका उसी से ग्रहण होता है। अत. जब अकच् प्रत्यय करके एष को बनावेंगे वहाँ भी लोप हो जायगा इस वास्ते अको ग्रहण किया। नञ् का अभाव अर्थ है उसमें प्रतियोगी सम्बन्ध से तद् शब्द को विशेषणता है इस वास्ते अभावस्य के नञ् को प्रधानता है और उत्तर पदार्थ को अप्रधानता है इस वास्ते अनुपसर्जन होगया तो त्यदादीनाम लगेगा नहीं तो हलन्त तद् शब्द रहेगा। इस वास्ते 'हलङ्यान्भ्यो' से सु का लोप हो जायगा फिर अनञ् समासे ग्रहण क्यों किया इस वास्ते कहते हैं अनञ् समासे किम् । उ०। इसी नञ् ग्रहण सामर्थ्य से कल्पना करते हैं कि नञ् समास में उत्तर पदार्थ प्रधान रहता है इस वास्ते 'त्यदादीनाम , लग जायगा' सो नस अस शिव ऐसा रूप बनेगा 'हलङ्यादि लोप नहीं होगा। अनञ् समासे नहीं करोगें तो असः शिवः में 'एतत्तदो०' से लोप

होजायगा इस वास्ते अनव् ग्रहण किया है। हलि किम् । हलि क्यों कहा तो एपोऽत्र यहा भी सु का लोप हो जायगा- इस वास्ते हलि कहा। जब हलि कहते हैं तब प्राप्ति नहीं है क्योंकि हल परे नहीं।

'सोचि लोपे०' न इसके सु का लोप हो जहा लोप होने पर पाद पूर्ण हो। यदि विना लोप हुये ही पाद पूर्ण हो जाय तो भी लोप नहीं होगा। इह ऋ क् पाद इति। यहा ऋचा का ही पाद लिया जाता है यह वामन कहता है। प्रमाण का अभाव होने से कहते हैं 'अविशेपादिति०' कोई विशेपता न होने से श्लोक पाद भी लिया जाता है जैसे सैपदाश० इत्यादि में लोप होगया। लोपे चेदिति किम्। लोप होने पर ही पाद पूर्ण हो ऐसा क्यों कहा। स इतश्चेति यहा भी लोप होकर सन्धि हो जाती इस वास्ते कहा यहा लोप के बिना ही पाद पूर्ण है। 'सत्येवेत्यव० यह निर्धारण कहा से आया इस वास्ते कहते हैं 'सत्येवेत्यवधारणन्तु०' यह अवधारण तो स्यश्छन्दसि बहुलम् इस सूत्र से इस मे बहुल की अनुवृत्ति से लब्ध हुआ है क्योंकि बहून अर्थात् लाति ददाति इति बहुलम् इस व्युत्पत्ति से सत्येव लब्ध हो गया फल सोह माजन्म० इत्यादिकों मे विना ही लोप के पाद पूर्ण होजाता है इस वास्ते यहा लोप नहीं हुआ। सत्येव इस निर्धारण ने यह वार्त्ता सिद्ध की कि जहा लोप होने पर ही पाद पूर्ण हो वहा लोप करो अन्यथा नहीं करो यदि विना ही लोप के पादपूर्ण हो अथवा लोप होने पर पादन्यून न हो वहा नहीं करो।

इति स्वादि सन्धि प्रकरणम् समाप्तम्

"अथ विसर्गसन्धि"

"विसर्जनीयस्यस", ॥ विसर्ग को सकार आदेश हो खर परे रहते। शं० । यह सूत्र पूर्व ही लिख दिया था फिर यहां क्यों लिखा । उ० । विसर्ग पद की अनुवृत्ति प्रदर्शनार्थ यहा लिखा है कि इस सूत्र से आगे के सूत्रों में विसर्ग की अनुवृत्ति होती है ।

"शर् परे विसर्ज०, शर् परे यस्मादिति बहुव्रीहि । शर् है परे जिससे ऐसा खर् परे रहते विसर्ग को विसर्ग हो । विसर्ग तो था ही फिर विसर्ग क्यों किया । इस वास्ते व्यर्थ होकर नियम करता है कि, विसर्ग को विसर्ग ही हो न त्वन्यत अन्य नहीं हो । सत्वादिकों का अपवाद है। यदि—'शर्परेन, शर् है परे जिससे ऐसा खर् परे रहते यत्प्राप्तं तन्नेति ऐसा कर देते तो प्रकरण गत जो सत्व है उसीका निषेध करता 'कुप्वो, ⌣ क ⌣ पौच, का निषेध नहीं करता इस वास्ते वास क्षौमम् अद्भि स्नातम् इत्यादिकों में जिह्वामूलीय और उपध्मानीय हो जाते 'विसर्जनीय ग्रहण करने से विकार मात्र का बाधा किया इस वास्ते कहते हैं; 'इह यथा यथ०, यहा यथा योग्य सत्व और जिह्वामूलीय इत्यादि नहीं हुये ।

'वा शरि, शर् परे रहते विसर्ग को विकल्प करके विसर्ग ही हो । 'खर परे श०, खर है परे जिससे ऐसा शर् परे रहते विसर्ग का लोप हो विकल्प करके । पक्षे विसर्गस्य विसर्ग वा ...यनेनेति भाव । द्वितीय पक्षे सत्वम् । दो विकल्प होने से शरी० ...ने । प्रकरण वश लिखते हैं कुप्वौ ⌣ क ⌣ पौच । तीन रूप ...गढो, ।..."विसर्ग को सकार आदेश सो ...

हो "अपदादि" कवर्ग पवर्ग परे रहते । श० । सूत्र में तो अपदादौ एक वचन है और वृत्ति में अपदाद्यौ, यह द्विवचन कैसे उ० । व्यत्ययो बहुलम् इससे एक वचन हो गया है । 'पाश कल्पक काम्यष्विति' पाश कल्पक काम्य यह प्रत्यय परे रहते सत्व कहना यह वृत्तिकार कहते हैं । परन्तु यथासम्भव यही उदाहरण मिलते हैं यदि अन्य भी मिले तो वहां भी कर लेना ।

'अनव्ययस्येति०' अव्यय भिन्न विसर्ग को सत्व कहना । प्रात कल्पम् यहां नहीं हुआ । परन्तु यह वार्तिक व्याख्यान से अव्ययीभाव समास में नहीं लगता है । इस वास्ते उपयस्काम्यति यहां सत्व हो जायगा ।

'काम्येरेवेति, काम्यच् प्रत्यय परे रहते रु सम्बन्धि रेफ का जहाँ विसर्ग हो वहीं सत्व होता है । नेह—यहां नहीं हुआ, गीः काम्यति । यहां गीर शब्द का रेफ है । श० । यहाँ 'इण पः, से ष हो जायगा । उ० । उसका भी वह वार्तिक निषेध करता है ।

'इण प, । इण से परे विसर्ग को षकारादेश हो अपदादि कवर्ग पवर्ग परे रहते "सोऽपदादौ का अपवाद है" यहाँ से आगे अपदादि का सम्बन्ध नहीं करना व्याख्यान से ।

"नमस्पुरसोर्गत्यो" गति संज्ञक नमस् और पुरस् के विसर्ग को सत्व हो कवर्ग पवर्ग परे रहते । नमस्करोति । यहां 'साक्षात्प्रभृतित्वात् ,कृञ के योग में नमस् को विकल्प से गति संज्ञा है तदभावे, गति संज्ञा के अभाव में, नमः करोति' बनता है । पुरोऽव्ययम् इससे पुरस् की नित्य गति संज्ञा होती है । पुरस्करोति— यहां नित्य ही सत्व हो गया 'अगतित्वान्नेह, गति संज्ञा न होने से

कहते हैं। पुर प्रवेष्टव्या यहां सत्व नहीं होता है। पूः पुरौ पुर प्रवेष्टव्या इत्यादि इस वास्ते लिखे हैं कि यह शब्द है गति संज्ञक अव्यय नहीं है।

इदुदुपधस्य चा०, इश्च उश्च इदुतौ–तौ उपधे यस्येति बहुव्रीहिः न प्रत्ययः अप्रत्ययः इकार उकार हैं उपधा में जिसके ऐसे प्रत्यय सम्बन्धी भिन्न विसर्ग को सत्व हो कवर्ग पवर्ग परे रहते। श०। इदुदुपधस्य चा०, इस सूत्र में अप्रत्यय ग्रहण क्यों किया। इकार उकार है उपधा में जिसके ऐसे विसर्ग को सत्व हो कवर्ग पवर्ग परे रहते ऐसा करने से आविष्कृतम् दुष्कृतम् इत्यादि सिद्ध हो जायेंगे। उ०। यदि अप्रत्यय ग्रहण नहीं करोगे तो अग्निसु करोति यहां उकार की इत्संज्ञा और लोप करके फिर 'ससजुषो,' से रुत्व करके फिर उकार की इत्संज्ञा और लोप करके 'खरवसानयो" करके विसर्ग हो गया। अग्निः करोति इस अवस्था में "इदुपधस्य" करके सत्व हो जायगा, क्योंकि प्रत्ययावयव सम्बन्धी रेफ का विसर्ग है इस वास्ते प्रत्यय ग्रहण करना चाहिये। श०। पुनरपि दोष नहीं है। क्योंकि अग्निः करोति में सु को रुत्वादि करके विसर्ग किया है सो यहां पर न तो विसर्ग ही हो सकता है और न ही षत्व हो सकता है क्योंकि प्रत्यय सु तब अग्नि सु इसकी पद संज्ञा थी और उसी समय प्रत्यय था अब तो प्रत्ययत्व धर्म रहा ही नहीं फिर प्रत्यय ग्रहण व्यर्थ ही है। उ०। स्थानिवद्भाव से, प्रत्यय मान कर विसर्ग किया है इसी वास्ते प्रत्यय के अवयव विसर्ग है। तो प्रत्यय ग्रहण नहीं करोगे तो षत्व हो जायगा इस वास्ते अप्रत्यय ग्रहण किया। श०। स्थानिवद्भाव तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि, स्थानिवद्भाव की दृष्टि में विसर्ग विधायक असिद्ध है। अतः प्रत्यय धर्म नहीं आ सकतो

प्रत्यय ग्रहण नहीं करने पर भी षत्व होना चाहिये । उ० । अप्रत्यय ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि ' वति ' घटितादेशाना त्रिपाद्यामपि प्रवृत्ति वति युक्त शब्दों की त्रिपादिकों में भी प्रवृत्ति होती है । इस वास्ते यहां स्थानिवद्भाव से प्रत्यय धर्म आ जायगा तो प्रत्यय भिन्न विसर्ग को षत्व हो प्रत्यय के विसर्ग को नहीं हो इस वास्ते प्रत्यय ग्रहण किया । एवं वायु करोति यह भी जानना ।

श० । दा धातु से औणादिक डुर प्रत्यय किया दा डर डकार की इत्संज्ञा और लोप दा उर, 'डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टे लोप, इससे दा में आकार का लोप किया । दुर् करोति रकारस्य विसर्गेदु. करोति । अब यहां अप्रत्यय ग्रहण चरितार्थ हो जायगा व्यर्थ नहीं होगा ॥ फिर कैसे कहते हो कि अप्रत्यय ग्रहण व्यर्थ होकर वति घटित आदेशों की त्रिपादिकों में भी प्रवृत्ति होती है उ० । यदि प्रत्यय ग्रहण यहां चरितार्थ है तो " न पदान्त द्विर्वचन०,, इस सूत्र घटित द्विर्वचनादि व्यर्थ होकर उक्त वचन को ज्ञापन करते हैं इस वास्ते स्थानिवद्भाव होकर प्रत्यय आ जायगा और अप्रत्यय यह निषेध होने से अग्नि करोति में षत्व नहीं होगा । इस वास्ते अप्रत्यय ग्रहण है । श० । मातृ शब्द से ङस् प्रत्यय, ङकारस्येत्संज्ञा और लोप मातृ अस् । "ऋत उत्, इससे ऋकार अकार को उर आदेश हो गया । मातुरस् "रात्सस्य,, करके सकार का लोप रेफ का विसर्ग मातु कृपा ऐसा प्रयोग बना अब यहां "इदुदुपधस्य० करके षत्व होना चाहिये । क्योंकि यह प्रत्यय भिन्न विसर्ग है । यदि स्थानिवद्भावेन प्रत्ययत्व लाया जाय तो वह नहीं आ सकता है क्योंकि यह उर प्रकृति प्रत्यय दोनों

से मिल कर बना है यदि "अन्तादिवच,, करके परादिवद्भाव से लावें तब भी नहीं आ सकता क्योंकि प्रत्यय क्स् अर्थात् का अस् था सकार का तो लोप हो गया केवल अकार शेष रहा थी। इस वास्ते अकार अल्मात्र वृत्ति धर्म होने से प्रत्यय धर्म वाला नहीं होगा। उ०। एकादेश शास्त्रनिमित्तकस्य न षत्वम् एकादेश शास्त्र है निमित्त जिसका ऐसे विसर्ग को षत्व नहीं होता है। एकादेश शास्त्र कौन 'ऋत उत्,, वह निमित्त है जिसका ऐसा जो रेफ स्थानिक विसर्ग है उसको षत्व नहीं होता है। इस वास्ते षत्व नहीं होता है। श। मातु कृपा यहा पर तो ऋतउत् करके जो उर् हुआ है तब तो एकादेश निमित्तक रेफ है विसर्ग तो है नहीं फिर "एकादेश शास्त्र निमित्तकस्य०" यह निषेध कैसे लगे उ०। एकादेश निमित्त निमित्तकस्य न षत्वम्, एकादेश जो निमित्त वह निमित्त जिसका ऐसे विसर्ग को सत्व नहीं होता है अर्थात् परम्परा से निमित्त है इस वास्ते निषेध हो गया। शं०। 'एकादेशशास्त्र निमि०, इसमें क्या प्रमाण। उ०। यह वचन है। श०। वचन किसने ज्ञापन किया। उ०। कस्कादि गण में आचार्य ने भ्रातुष्पुत्र शब्द को षत्वार्थ पाठ किया है वह पाठ क्यों किया क्योंकि 'इदुदुपधस्य, करके ही षत्व हो जायगा फिर कस्कादिगण में भ्रातुष्पुत्र का पाठ हुआ व्यर्थ वही व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि "एकादेश शास्त्र निमित्तकस्येति,, यह वचन हुआ, फल मातुः कृपा यहां षत्वाभाव रूप है। और स्वाशे चरितार्थ है कि भ्रातुष्पुत्र. शब्द में षत्व हो। श०। मातु कृपा में तो दोष नहीं है क्योंकि

यहाँ " षत्व तुको रसिद्ध ,, षत्व और तुक् करने पर एकादेश शास्त्र असिद्ध होता है यहा प्रकरण में षत्व करना है इस वास्ते "ऋत उत्,, असिद्ध हो जायगा। तो उकार उपधा में और विसर्ग नहीं दीखेगा फिर " एकादेश शास्त्र ,, यह वचन ज्ञापन करने में क्या प्रमाण क्योंकि भ्रातुष्पुत्र शब्द का तो पाठ कस्कादि में षत्वार्थ है व्यर्थ है नहीं। उ०। "पदान्त पदाद्योरेकादेशोऽसिद्धो भवति नान्यत्र,, पदान्त और पदादि कार्य करने पर ही एकादेश शास्त्र असिद्ध होता है अन्यत्र नहीं। यहा न तो पदान्त है और न पदादि है इस वास्ते निषेध नहीं हुआ। यह वार्तिक "कोऽसिचत्" यहा नह् में चरितार्थ है। "मुहुस प्रतिषेध" मुहुस् शब्द के विसर्ग को षत्व का प्रतिषेध कहना " तिरसोन्यतरस्याम्,, तिरस् शब्द सम्बन्धि विसर्ग को सत्व हो कवर्ग पवर्ग परे रहते विकल्प करके। ≍ कु ≍ प्वो रित्यस्यापवाद।

"द्विस्त्रिश्चतुरिति॰,, तद्धित मे कृत्वसुच् प्रत्यय होता है। कृत्वोर्थ में वर्त्तमान जो द्विस् त्रिस् चतुर् शब्द तत्सम्बधि विसर्ग को षत्व हो विकल्प करके। कवर्ग पवर्ग परे रहते। द्विष्करोति, त्रिष्करोति चतुष्करोति। दो वार तीन वार चार वार यह क्रम से अर्थ हैं। श०। सूत्र में द्विस् त्रिस् शब्द सुच् प्रत्यायान्त हैं इस वास्ते इन दोनो के साहचर्य से चतुर शब्द भी सुच प्रत्ययान्त ही लिया जायगा फिर सूत्र मे कृत्वोर्थ ग्रहण क्यों किया। उ०। कृत्वोर्थ ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि ' सहचरिता सहचरितयो र्मध्ये सहचरितस्यैव ग्रहण" यह परिभाषा अनित्य है। इस वास्ते यहा नहीं लगेगी तो जहा चतुर शब्द सुच प्रत्ययान्त नहीं है जैसे चतुष्कपाल इत्यादि प्रयोगों में भी "द्विस्त्रिश्चतु,

इस करके विकल्प से षत्व होकर दो रूप बन जायगे इसी
कृत्वोर्थ ग्रहण करना कि जिससे चतुर् शब्द भी सुच् प्रत्य
ही लिया जावे जिसमें सुच् प्रत्यय नहीं हुआ है वहां सूत्र
लगे। अनित्य का फल "दीधी वेवीटाम्" इस सूत्र में दीधी
के साहचर्य से इट् धातु का ग्रहण नहीं हुआ। किन्तु अलग
आगम लिया गया। अब यहा चतुष्कपाल में अव्युत्पत्ति पक्ष
आश्रय लेकर "इदुदुपधस्य०" करके नित्य षत्व हो गया है
प्रत्युदाहरण वाला चतुर शब्द सुच् प्रत्ययान्त नहीं है।
सुच प्रत्ययान्त है वहा दो रूप बनते हैं।

"इसुसोः सामर्थ्ये" सामर्थ्य अर्थ में वर्त्तमान जो इस्
उसन्त पद तद् अवयव जो विसर्ग उनको षत्व हो कवर्ग पवर्ग
रहते विकल्प करके। श०। सामर्थ्य दो प्रकार की ह
है एकार्थी भाव रूपा और व्यपेक्षा रूपा तो इस सूत्र
सामर्थ्य पदमें क्या लेते हो। उ०—"सामर्थ्यमिहेति०" यहां साम
व्यपेक्षा रूपा लेते हैं एकार्थी भाव रूपा नहीं यदि एकार्थीभ
रूपा सामर्थ्य लेली जाती तो सर्पिष्करोति में यह सूत्र नहीं लग
क्योंकि यहा एकार्थी भाव नहीं है। इस वास्ते इदुदुपधस्य क
नित्य सत्व हो जाता। और परम सर्पि कुण्डिका में एकार्थी भा
रूप सामर्थ्य होने से "इसुसो" सूत्र से विकल्प करके स
हो जाता यह दो दोष हो जाते। इस वास्ते सामर्थ्य पद
व्यपेक्षा रूपा सामर्थ्य लेना। श० इस सूत्र मे व्यपेक्षा रूप सामर्
लिया जाता है इसमे क्या प्रमाण है। उ० "नित्यंसमासे" इ
सूत्रमें समास ग्रहण सामर्थ्यसे हम इसुसो सामर्थ्यमें सामर्थ्य पद

व्यपेक्षा लेते हैं। यदि सामर्थ्य पद में व्यपेक्षा नहीं लेते एकार्थी भाव का ग्रहण कर लेते तो इसके आगे के सूत्र में इसी सूत्र से सामर्थ्य की अनुवृत्ति ले जाते फिर समास ग्रहण क्यों किया वही उत्तरसूत्र घटक समास ग्रहण व्यर्थ हो कर नियम करता है इस सूत्र में सामर्थ्य में व्यपेक्षा लेना आगे के सूत्र में नहीं। श०—परम सर्पि: कुण्डिका यहां तो दोष नहीं 'नित्य सम से इस सूत्र से नित्य षत्व हो जाता। उ०—उस सूत्र में अनुत्तर पदस्थस्य का अधिकार है। इस वास्ते अनुत्तर पदस्थस्य निषेध कर देगा। इस वास्ते षत्व नहीं होता है। श०—व्यपेक्षा किसे कहते हैं। उ०—पृथगर्थाना पदानामाकांक्षादि वशात् परस्परसम्बन्ध· सा व्यपेक्षा श०—एकार्थीभाव क्या है। उ—एकार्थोपस्थिति बोध जनकत्वम् एकार्थीभावत्वम्। श०—इस सूत्र में सामर्थ्य ग्रहण क्यों किया—उ० सामर्थ्य नहीं कहते तो तिष्ठतु सर्पि पिव त्वमुदकम् यहा भी हो जाता इस वास्ते कहा। भाव यह है कि, 'तिष्ठतु सर्पि पिव त्वमुदकम् यहा न तो व्यपेक्षा है और न एकार्थी भाव है असम्बन्ध वाक्य है। सर्पि का अन्वय तिष्ठतु में है और उदक का पिव में। इस वास्ते व्यपेक्षाभी नहीं एकार्थी भाव का तो कहना ही क्या है वह तो हो ही नहीं सकता है।

'नित्य समासे०, इसन्त उसन्त, जो पद, तदवयव जो अनुत्तर पदस्थ विसर्ग उन्हों को नित्य षत्व हो कवर्ग पवर्ग परे रहते। श०—अनुत्तरपदस्थस्येति किम् उ०—परम सर्पि कुण्डिका यहां भी षत्व हो जायगा इस वास्ते किया। जय करते हैं सब प्राप्ति नहीं क्योंकि परम शब्द के उत्तर पद में स्थित विसर्ग हैं श०—सर्पिष्कुण्डिका यहा पर 'नित्य समासे०, इसी से षत्व हो